

*** श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ***

श्रीरासप्रबन्धः



श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वतीविरचितः

श्रीहरिदासशास्त्री

प्रकाशक * मुद्रक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,

श्रीहरिदासनिवास

कालीदह वृन्दावन

जिला—मथुरा । उत्तर प्रदेश



प्रकाशनतिथि :—ई।६।८०

श्रीगौराङ्गाब्द ४६४

प्रकाशन सहायता ३.००

ग्रन्थ—५४

विज्ञप्ति— ६

पृष्ठ संख्या—६०

सर्वस्वत्वसुरक्षितः



*** श्रीश्रीगौरगदाधरो विजयेताम् ***

श्रीरासप्रबन्धः

श्रीपाद प्रबोधानन्दसरस्वतीविरचितः



सच

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन

न्याय-वैशेषिकशास्त्र, न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण,
सांख्य, मीमांसा वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क,
वैष्णवदर्शनतीर्थ, विचाररत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितः ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशक :—

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,

श्रीहरिदासनिवास

कालोदह वृन्दाबन

जिला—मथुरा । उत्तर प्रदेश





*** श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ***

*—**--*

विज्ञप्ति:

श्रीरास प्रबन्ध नामक ग्रन्थ—मुद्रित हुआ, यह ग्रन्थ आश्चर्य रास प्रबन्ध अद्भुत रास प्रबन्ध नाम से प्रसिद्ध है, ग्रन्थ रचयिता श्री पाद प्रबोधानन्द सरस्वती हैं, श्रीमद् भागवतीय रास लीला के अनुसरण से यह ग्रन्थ लिखित होने पर भी गुम्फन वैचित्र्य से यह एक अनुपम आस्वादनीय ग्रन्थ में परिणत हुआ है। प्रथमत ३, २५, ३४, ४६, ६१, ७०, १२३, १५६, १७०, २०४, २१६, २३२, २४०, २५२,

(क)

२६६, २८०, श्लोक विभिन्न छन्दों में रचित होकर यह सूत्र स्थानीय है, एवं २८० श्लोक सम्पूर्ण रास प्रबन्धका निष्कर्ष प्रतिपादक है, सूत्र स्थानीय श्लोक के अवलम्बन से विवृत्ति रूप श्लोक समूह पञ्चटिका छन्द से ग्रथित हुआ है। उस का लक्षण—प्रतिपद यमकित षोडश मात्रा नवमगुरुत्व विभूषित गात्रा, पञ्चटिका पुनरत्र विवेकः क्वापि न मध्यगुरुगणकः ।

अन्यान्य ग्रन्थ में श्रीसरस्वतीपाद प्रेमोन्मत्त होकर धारा वाहिक रचना में असमर्थ थे, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में आप की धारा वाहिक रचना सफल हुई है, आप की भाषा में पुष्पित वृन्दावन का दृश्य इस प्रकार है—

कुसुमितपल्लवितद्रुमवल्लि स्फुटितकदम्बककिङ्कुमल्लि
स्मेरकुमुदकरवीरविराजि, प्रहसितकेतकचम्पकराजि ॥१०॥
विकसित कूटज कुन्द मन्दारं सुफलित पनसपूगसहकारं
हरिचरणप्रिय तुलसी विपिनैः शोभमान मुरपरिमल मसृणैः ॥११॥
विलसज्जातीयुथिकमतुलं विकचस्थलपङ्कजवकमञ्जुलं
सान्ततसन्तानकसन्तानं वरहरिचन्दनचन्दनविपिनं ॥१२॥

पारिजातवनपरमामोदं राधाकृष्णजनितबहुमोदम्
कुरुवकमरुवकमाधविकाभि र्दमनकदाडिममालतिकाभिः ॥१३॥
शोफालिकया नवमालिकया शोभितमपि बहुविधभिन्तिकया,
ललितलवङ्गवनैरतिमधुरं नवपुत्रागरुचिरुचिरम् ॥१४॥
स्तवकितनवकाशोकवनालि स्मेरशिरीषपरिस्फुटपाटलि ।

बन्धुरमभिनवबन्धुकविपिनैः शोभितमभितस्तिलकाम्लानैः ॥१५॥

ग्रन्थ नाम करण में आश्चर्य एवं अद्भुत शब्द प्रयोग से इस में यथेष्ट वैलक्षण्य एवं अद्भुतत्व है, श्रीपादने प्रथमतः ३-२४ श्रीवृन्दावन की वर्णना की है, यह भी वृन्दावन शतक के अनुरूप है, २५-३२ में श्रीकृष्ण के रास विलासी रूप की वर्णना है, ३४, में कदम्ब तरुतल में त्रिमङ्गल भङ्गिमरूप में श्रीराधा नाम से मोहन वंशी

वादन करने पर ३५-४८ विपर्यस्त वेशभूषा से गोपीयों का अभिसार
 ५० श्यामानुराग से श्रीराधा का भाव की विवृति, ५६, मुरलीनिनाद
 श्रवण से अभिसारोद्यता राधा के प्रति सखियों का निषेध वचन ।
 ६०।६१ श्रीराधा का अदर्शन से श्रीकृष्ण की विरह वेदना ६२--६६
 गोपीगण की रस लालसा को देखकर ७०--७१ श्रीकृष्ण द्वारा निज
 विधुरताख्यापन, ७२ श्रीराधा से मिलनेके लिए गोपी गणके परामर्श
 से दूतीप्रेरण, ७३--दूती के मुख से श्रीकृष्ण की राधातन्मयता, राधा
 निष्ठा, एवं गोपी जन लाम्पट्य की वर्णना, ६३-६६--स्वप्न में श्री
 कृष्ण का श्रीराधा दर्शन, एवं रसमय वाक्यालाप श्रवण, ६७--६९--
 राधानाम जपकारी श्रीकृष्ण की राधा प्राप्तिहेतु वेणु ध्वनि ॥१००
 १०३ श्रीराधा विहारी श्रीकृष्ण का विलाप, गोपीगण की उपेक्षा,
 १०४--१०६, श्रीकृष्ण के विलाप से वृन्दावनीय स्थावर जङ्गम के
 रोदनादि, १११-१२० ललिता द्वारा श्रीराधा के अभिसार में वाधा
 प्रदान ॥१२२॥ १२४, दूती के मुख से श्रीराधा की निरोध वार्त्ता
 को सुनकर गोपी वेश से कृष्ण का अभिसार, १२५--१३७--उन के
 मुख से श्रीराधा की प्रशंसा एवं श्री हरि का निर्दोषत्व ख्यापना, १३८
 १४८ श्रीराधा मिलन हेतु श्रीहरि की तीव्रतर उत्कण्ठा का प्रतिपादन
 १५१-१५५--श्रीकृष्ण के रूप सादृश्य को देखकर उनके प्रति श्रीराधा
 की परम प्रीति एवं आलिङ्गन दान । १५६-१५९ इस परिरम्भण से
 परिचय प्राप्तकर श्रीराधा का कुञ्जगृह में प्रवेश एवं अङ्ग सङ्ग दान
 १६२-१६७, युगल किशोर के रासोपयोगी पुनर्वेशधारण, १६७--१७२
 निखिल कलावित् सखीगण के साथ वृन्दावन में प्रवेश, १७३-१८२,
 सखी गण की सेवादि, १८३-१९० बहुमूर्ति प्रकटन द्वारा निज काय
 व्यूह रूपा सखीगणके साथ रासोपभोग हेतु श्रीराधा की प्रेरणा प्रदान
 १९१-२०२ विविध रसास्वादन, २०३--२०४ सखीगण के अभिमान
 प्रशमन हेतु श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण का अन्तर्धान । २०५--२१२
 गोपीगण का सर्वत्र कृष्णान्वेषण एवं जिज्ञासा । २१३-२१४ श्रीहरि
 (ग)

पदाङ्क २१५ एवं श्रीराधा पदचिह्न दर्शन से २१६--२२४ उनका विलासानुमान, २२५--२२६, सखी गण के लिए श्रीराधा का खेद प्रकाश, एवं चलनेमें असम्मति, २२७--श्रीकृष्णका पलायन २२०-२३० श्रीराधा की मूर्च्छा, सखी समागम । २३२ श्रीकृष्णाविर्भाव २३३-२३६-गोपियों की भावविह्वलता (२३७-२६८) व्रजाङ्गनागण के साथ रासोत्सव २६९-२७६, श्रीराधाकृष्ण का युगपत् एवं क्रम नृत्य, गोपियों के गान वाद्य प्रभृति रसमय एवं काममय उत्सव २७७-२७८ जलकेलि, २७९ वसन भूषणादि का परिधान एवं कुञ्ज में शयन, इस प्रकार २८१ प्रबन्ध का निष्कर्ष यह है—

परम रस समुद्रोज्ज्वलभणस्यातिकाष्ठा

परमपुरुषलीलारूपशोभातिकाष्ठा ।

परमविलसदाद्यप्रेमसौभाग्यभूमा ।

जयति परपुमर्थोत्कर्षसीमा स रासः ॥

वह रास परमरस सागर की प्रकाश शील चरमावधि परम पुरुष लीला, रूप शोभा की चरमावधि, परम विलासमय आद्य शृङ्गार प्रेम एवं सौभाग्यातिशय व्यञ्जक एवं परमपुरुषार्थशिरोमणि की सीमा रूप में जय युक्त हो ।

श्रीरास प्रबन्ध शब्द से भी भगवत् प्रेयसी रूपा लक्ष्मी गण, कवित्व सङ्गीतादि स्वरूपा सरस्वती गण, मेधा सत्प्रतिभादिरूप बुद्धि वृत्ति समूह, धर्म, अर्थ, काम, एवं सम्पद् रूपा विभूतिगण, शोभा स्वरूप, चामर व्यजनादि श्रीकृष्ण सेवाके उपकरण एवं वेशरचनादि बहुल क्रीडारसास्वादन ही रास है, उक्त सामग्री समूह ही श्रीराधा है. एवं श्रीराधा ही मूल भक्ति स्वरूपिणी है । गौतमीय तन्त्र में श्रीराधा स्वरूप वर्णन में लिखित है—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता

सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥

(घ)

श्रीकृष्ण जिस प्रकार मूल भगवान् हैं अतएव उनके अंश समूह भी उन में अन्तर्भुक्त हैं, उस प्रकार श्रीराधा भी उनकी प्रधाना प्रेयसी होने के कारण आप मूल लक्ष्मी हैं, एवं उन में ही उनकी अंश भूता यावतीय लक्ष्मी गण के सुस्पष्ट समावेश हैं। अतएव आप सर्व लक्ष्मी मयी हैं, पाशाक्रीड़ा एवं वाकोवाक्यमें जयेच्छु होने के कारण आप देवी हैं, अतएव आपमें सरस्वती शालिनत्व एवं बुद्धि शालिनत्व विद्यमान है, परदेवता शब्द से धर्म, अर्थ, काम सम्पद् युक्तता का बोध होता है, कृष्णमयी—कृष्ण स्वरूपा, अतएव विभूति युक्तता हैं, सर्वकान्ति—शोभाशालिनीत्व है, राधिका आराधिका, अतएव सर्वविध कृष्ण सेवा के उपकरण सम्पन्नात्व हैं। परा सम्मोहिनी शब्द से वेश रचना शालिनीत्व का बोध होता है। इस प्रकार राधा प्रधान क्रीड़ा ही रास है ॥ और यह भक्ति का चरम दृष्टान्त स्थल है। उसका प्रकार ४६ श्लोक में आपने कहा है,।

न लोक वेद व्यवहार मात्रं न गेह देह द्रविणात्मजादि

यत्राविदं स्ता न पथोऽपथो वा स कोऽपि जीयादिह कृष्णभावः ।

गोपीगण जिस भावसे समाक्रान्त चित्त होकर लोक व्यवहार वेद मर्यादा प्रभृति को भूलगई थीं, जो भाव—गृह, देह-धन पुत्रादि को भी विस्मृत करा देता है, जिस से गोपीगण सुपथ विपथ कुछ भी जान न सकीं, वह अनिर्वाच्य कृष्णभाव ही इस जगत् में अमरत्व को प्राप्त करे ॥

आप के रचित ग्रन्थावलीमें सर्वत्र भाव एवं भाषा की एकता अक्षुण्ण है, परकीया भावका वर्णन आपके ग्रन्थ में सुस्पष्ट है, चैतन्य, चन्द्रामृत श्रीराधारससुधानिधि, श्रीवृन्दावन महिमामृत श्रीसङ्गीत माधव, आश्चर्य रास प्रबन्ध, श्रीश्रुति स्तुति व्याख्या, श्रीगीत गोविन्द व्याख्या, कामगायत्री व्याख्या, गोपाल तापनी व्याख्या ग्रन्थसमूह के रचयिता श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद हैं।

हरिदास शास्त्री

*** श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ***

—***—

श्रीरासप्रबन्धः

—***—

जयति जयति राधापाङ्गः सङ्गीभुजङ्गी
कवलित उरुबाधा मूर्च्छितोऽनन्य साध्यः ।
तदधर सुधयोच्चैर्जोवितः श्यामधामा
तदति विषविषङ्गवर्णं कश्चित् किशोरः ॥१॥
जयति जयति वृन्दारण्यचन्द्रोऽतिचित्रो
न्मदरसमय रासोल्लास संभ्रान्त मूर्तिः ।
प्रमद मदनलीला मोहनं श्यामधामा
निरुपम सुखसीमाभीररामाभिरामः ॥२॥

अस्तिमहाद् भुतवृन्दारण्यं सन्तत वाहि महारसवन्यम् ।
परम मनोहर परम सुपुण्यं रसमय सकलधाममूर्धन्यम् ॥३॥

—***—

राधागदाधरं नत्वा कृष्णचैतन्य संयुतं
श्रीरासस्यप्रबन्धानां व्याख्याग्रन्थो विधीयते ॥

श्रीराधा की अपाङ्ग सङ्गीती भ्रूसर्पिणी द्वारा दष्ट एवं अनेक प्रकार पीड़ा से मूर्च्छित, अन्यान्य उपायों से दुश्चिकित्स्य होने पर भी श्रीराधा के अधर सुधा के आस्वादनसे महाविष विनष्ट होने पर पुररुज्जीवित श्याम वर्ण के किसी अनिर्वचनीय किशोर की जय हो जय हो ॥१॥ अतिशय विचित्र उन्मद रसमयरास के उल्लास से विभोर मूर्ति, उन्मद मदन लीलाके आवेश से मोहन स्वरूप, निरुपम सुख की सीमाप्राप्त गोप रमणीयों से वेष्टित परमरमणीय श्रीवृन्दावन चन्द्र श्याम सुन्दर की जय हो जय हो ॥२॥ वृन्दावन

सकल गुणानां स्फुरदति भूमि, प्रोज्ज्वल चिन्तामणिमयभूमि
 श्रुतिर्दुर्गम तृणमात्रा विभूति स्फीतमहासुखसिन्धुवभूति ॥४॥
 प्रकृति परे परिपूर्णानन्दे महसि महाद्भूत हरिरसकन्दे ।
 भ्राजमानमखिलोज्ज्वलरम्यं मधुरविशदहरिभावसुगमचम् ॥५॥
 मुख्य रसात्मक परमाकारं विमलमनोज वीजरुचिसारम् ।
 मायादिद्यापारमपारं राधामाधव नित्यविहारम् ॥६॥
 राधामधुपति चारुपदाङ्कुरं रङ्कितमनुलसुधारस पङ्कजः ।
 स्वच्छ सुशीतल मृदुल सुवासं विभ्रदवनितलमद्भुतभासम् ॥७॥
 वक्त्रे परागपुञ्ज कमनीयवक्त्रमकरन्द पूररमणीयम् ।
 वक्त्रे गलित कुसुमैः कृतशोभंवक्त्रं मणिकपूररज रुचिराभम् ॥८॥
 सन्ततफल कुसुमादि विचित्रैः कोटि महासुर पादपञ्चैः ।
 गुल्मलतातरुभिः सुपवित्रैर्मण्डितमीशजुषामपिचित्रैः ॥९॥

नामक एक महा अद्भुत धाम है, जिस से शृङ्गार नामक महारस की
 वन्या निरन्तर प्रवाहित हो रही है, जो परम मनोहर एवं परम पवित्र
 है, सकल रसमय धाम के शिरोमणि स्वरूप है ॥३॥ निखिल गुणों
 के आकर स्वरूप उक्त धाम की भूमि अतिउज्ज्वल चिन्तामणिमय है,
 उस भूमि के एक तृण की विभूति भी श्रुति समूह के अगोचर व
 दुर्वोध्य है, उस में उच्छलित महा समुद्र की अनुभूति होती रहती है,
 ॥४॥५॥ उक्तधाम प्रकृति से अतीत परिपूर्णानन्द, महा अद्भुत हरि
 रस कन्द (बीज) स्वरूप ज्योति में विराजमान हैं, तत्रत्य निखिल
 वस्तु ही उज्ज्वल, रम्य, अथवा उज्ज्वल शृङ्गाररस से रम्य एवं
 मधुर, विशुद्ध होने पर भी श्रीहरि भक्ति से ही लभ्य व सुलभ है,
 मुख्य शृङ्गार रसात्मक सुन्दराकृति विशुद्ध कामबीज की कान्ति से
 अत्युत्कृष्ट होकर माया, अविद्या के अतीत में स्थित है एवं श्रीराधा
 माधव के अपार नित्यविहार स्थल है ॥६॥७॥ श्रीराधा मधुपति के
 सुचारु पदाङ्कुर एवं अनुलनीय सुधारस पङ्कज द्वारा अङ्कित है, स्वच्छ
 सुशीतल मृदुल, सुवासित एवं अद्भुत कान्ति पूर्ण भूमिखण्ड से शोभित
 है ॥८॥ वहीं पर पराग पुञ्ज से परम कमनीय, कहींपर मणि

कुसुमित पल्लवित द्रुमवल्लि स्फुटित कदम्बक किशुकमल्लि ।
 स्मेर कुमुद करवीर विराजि प्रहसित केतक चम्पकराजि ॥१०॥
 विकसित कूटज कुन्दमन्दारं सुफलित पनस पूगसहकारम् ।
 हरि चरण प्रिय तुलसी विपिनैः शोभमानमुखपरिमलमसृणः ॥११॥
 विलसज्जाति यूथिक मतुलं विकचस्थलपङ्कजवकवञ्जुलम् ।
 सन्तन सन्तानक सन्तानं वर हरिचन्दनचन्दनविपिनम् ॥१२॥
 पारिजात वन परमामोदं राधाकृष्णजनितबहुमोदम् ।
 कुरुवक मरुवक माधविकाभिर्दमनक दाडिममालतिकाभिः ॥१३॥
 शेफालिकया नवमालिकया शोभितमपिवहुविधझिण्टिकया ।
 ललित लवङ्गवनैरतिमधुरं नवयुग्मागरुचिरुचिरम् ॥१४॥
 स्तवकित नवकाशोकवनालिस्मेरशिरोष परिस्फुटपाटलि ।
 बन्धुरमभिनव बन्धुकविपिनैः शोभितमभितस्तिलकाम्लानैः ॥१५॥

कर्पूर रज की आभा से भण्डित है ॥१६॥ निरन्तर फल कुसुमादि
 सम्भार से विचित्र कोटि कोटि महा कल्प वृक्ष समूह भी जय शील
 परमपवित्र एवं ईश्वर सेवीगणके लिए विस्मय हेतु बनकर लता गुल्म
 तरु गण द्वारा उक्त धाम सुशोभित है ॥१७॥ उसके प्रतिवृक्ष प्रति
 लता कुसुमित, पल्लवित है, कदम्ब पलाश, मल्लिका वृक्षगण प्रस्फुटित
 हुए हैं । उसमें ईषत् विकसित कुमुद, करवीर पुष्प विराजित है एवं
 केतकी चम्पक राशि हँसरहें हैं ॥१८॥ कूटज, कुन्द, मन्दार पुष्प
 समूह विकसित हैं, पनस गुवाक, आम्रवृक्ष समूह में सुन्दर सुन्दर फल
 लगे हुए हैं । महापरिमल से सुस्निग्ध हरिचरण प्रिय तुलसी कानन
 द्वारा सुशोभित है ॥१९॥ उस में अतुलनीय जाति, यूथिका प्रभृति
 विलसित है, स्थलपद्म, वक वञ्जुल (अशोक, वेतस) प्रस्फुटित हैं
 निरन्तर सन्तानक (कल्पवृक्ष) समूह वंशविस्तार कर रहे हैं ॥२०॥
 ॥२१॥ पारिजात वन की परम सुगन्ध श्रीराधाकृष्ण को आनन्द
 प्रदान कर रही है । कुरुवक, मरुवक माधविकादि द्वारा दमनक,
 दाडिम, मालतिकादि द्वारा, एवं शेफालिका नवमल्लिका, बहुविध
 झिण्टिकादि द्वारा वह सुशोभित है, ललित लवङ्ग वनराजि से वह

निज निजविभवैः प्रतिपदमधिकं, विलसदनन्तजाति तरुलतिकम्
 निरवधिर्वाधि मधुरगुणसिन्धुसुविचिरनिन्दितकोटि रवीन्दु ॥१६॥
 वापीकूप तडागैर्ललितं मणिमय केलिमहोदरमहितम् ।
 रासोचितमणि कुटि टमराजंरञ्जयदेक विमलरसराजम् ॥१७॥
 रक्तकनक कर्पूरपरागं विभ्रद् रविजा पुलिन सुभागम् ।
 राधामाधव केलिनिकुञ्जं दधदतिमञ्जुगुञ्जदलिपुञ्जम् ॥१८॥
 मदकल कोकिल पञ्चमरागं स्थिरचर निकर मूर्च्छदनुरागम् ।
 मदशिखण्डिकृत ताण्डव रङ्गं चकित चकित परिलोलकुरङ्गम् ॥१९॥
 परमविचित्रतराकृतिरावैः खगपशुभिर्वहुभिर्वहुभावैः ।
 शोभितमपि शुक सारी निचयैर्वरदसुप्तयोः स्वपद विनेयैः ॥२०॥
 अत्यद्भुततम ऋतुषट्कश्चि श्रंसितनैः श्रेयसि विपिनश्चि ।

अतिमधुर एवं पुन्नाग नागकेशर प्रभृति की कान्ति से अतिमनो
 हर है ॥१५॥ नव नव अशोक वनराजि स्तवकित हैं, शिरीष, कुसुम
 समूह ईपद् हास्य कर रहें हैं, एवं पाटल पुष्पराशि परि स्फुट हैं ।
 अभिनव बन्धूक (बान्धुलि) पुष्पवन समूह के द्वारा मनोहर है, एवं
 चतुर्दिक में प्रस्फुटित अम्लान पुष्प वृक्ष राजि से सुन्दर शोभित है ।
 ॥१६॥ अनन्त प्रकार-तरु लतादि क्षण क्षण में अधिकतर निज निज
 शोभा समृद्धि प्रकटित कर रहें हैं । उस में निरन्तर मधुर गुण सिन्धु
 बुद्धि प्राप्त हो रहे हैं एवं उसकी ज्योति से कोटि कोटि सूर्यचन्द्रादि भी
 अनादि काल तक म्लान होकर रहते हैं ॥१७॥ श्रीवृन्दावनस्थ
 यमुना पुलिन में सुन्दर सुन्दर भूखण्ड (स्थल विशेष) रक्त, स्वर्ण,
 एवं कर्पूर परागवर्ण के हैं, वह अति मनोज्ञ है । भ्रमर समूर द्वारा
 गुञ्जरित श्रीराधामाधव के केलि निकुञ्ज से सुशोभित भी है ॥१८॥
 उस में मदकल कोकिलोंका पञ्चम राग श्रुत होता है, वहाँ के स्थावर
 जङ्गमात्मक जीव निचय अनुराग की प्रवलता से मूर्च्छित होते हैं ।
 मदमत्त मयूर गण भी ताण्डव नृत्य से सब के कौतुहल विस्तार करते
 रहते हैं, एवं भयभीत महाचञ्चल हरिणगण इतस्तत विचरण कर
 रहें हैं ॥२०॥ परम विचित्र आकृति धारी एवं काकलि ध्वनि युक्त,

मन्द सुगन्ध सुशीतलपवना जुष्टमृतयमुनान्भसिविशता ॥२१॥
 आद्य विशुद्धमहारस रूपं खेलदेतद्वर मन्मथमूपम् ।
 सान्द्रानन्द परम रसकाष्ठं राधातागर भाव गरिष्ठम् ॥२२॥
 अधिललितादिक सुललितभावं प्रकटित सहजरसवदनुभावम् ।
 निखिल निगमगणदुर्गममहिम प्रेमानन्द चमत्कृतिसीम ॥२३॥
 शारद चन्द्रकर खचितं स्फीतरत्नाब्जबुधि वीचीनिचितम् ।
 अधिरजनीमुख मुज्ज्वल वेशः कोऽपि किशोरस्तत्र प्रविवेश ॥२४॥

महाचमत्कार निधानलविलास भूषादिभिरत्यपूर्वः ।
 रासोत्सवाय प्रविशन् प्रदोषे वृन्दावनं नन्दतिकृष्णचन्द्रः ॥२५॥

रसमय लीलः कुवलयनीलः सकल युवति मोहनगुणशीलः ।
 बहुभाव युक्त अनेकानेक पशु पक्षि समूह द्वारा श्रीयुगल किशोर के
 चरण प्रान्त में उपनीत शुभ सारी समूह से भी शोभित हैं ॥२१॥
 महा अद्भुततम पद ऋतु की शोभा समन्वित वहाँ के कानन-श्रीमहा
 मञ्जल के निदान स्वरूप है । अतिसुन्दर यमुना के जलस्पर्शी मन्द
 सुगन्ध एवं सुशीतल पवन द्वारा उक्त वृन्दावन शोभित हैं, ॥२२॥
 श्रीवृन्दावन, आद्य विशुद्ध महारस शृङ्गार स्वरूप एक माल महा-
 मन्मथ राज की क्रीड़ा भूमि है, उस में राधा एवं तदीय नागर के
 भाव से गरिष्ठ सान्द्र आनन्द परम रस की काष्ठा 'चरमसीमा वर्तन'
 मान है ॥२३॥ श्रीवृन्दावन ललितादि सखीगण के सुललित भाव
 माधुर्य को बहन करता है, उस में सहज रसमय अनुभाव रत्यादि
 सूचक गुण क्रियादि प्रकटित है, उस की महिमा समूह वेद के लिए भी
 दुर्वोध्य है, एवं परमप्रेमानन्द चमत्कार की परम सीमा में वह
 अवस्थित है ॥२४॥ शारदीय चन्द्र किरण माला से खचित सुप्लावित
 एवं उद्वेलित रस सिन्ध की तरङ्ग माला से परिख्यात हैं ऐसे वृन्दावन
 में प्रदोष काल के समय में उज्ज्वल वेशधागे किसी किशोर का
 प्रवेश हुआ । महा चमत्कार के स्वरूप विलास भूषादि के द्वारा
 अति अपूर्व मण्डित कृष्णचन्द्र प्रदोष के समय रासोत्सव करने के
 लिए वृन्दावनमें प्रविष्ट होकर आनन्दित हुए ॥२५॥ आपकी रसमयी

कुञ्चितकेशः सकल कलेशः पीतपटाञ्चित पृथुकटिदेशः ॥२६॥
 मकराकृति मणिकुण्डलदोलः स्फुरदतिरुचि कल्लोल कपोलः ।
 मुक्तारत्नविचित्र निचोलः स्मररसमधुरविलोचन खेलः ॥२७॥
 रत्नतिलक रुचिररञ्जितभालः स्निग्धचपलकुटिलालकजालः ।
 कलितललिततर बहुविधमालः केलि कला रभसातिरसालः ॥२८॥
 प्रमुदित वदन मनोहर हासः कम्बुकण्ठतट पदक विलासः ।
 विरचित युवति विमोहनचूड़ शिचित्रमाल्यवृत वर्हापीड ॥२९॥
 पीनोरसि लसदुरु मणिहारः स्फुटदङ्गदकङ्कण रुचिधारः ।
 सुभग नितम्ब रणमणि रसनः परिहित रासोचितवरवसनः ॥३०॥
 मणि मञ्जीर मञ्जुस्त चरणः प्रसृमर पादाङ्गद मणि किरणः ।
 श्रवण विराजित रत्न वतंसकरधृत मणिमय मोहनवंशः ॥३१॥
 राधानुस्मृति मुहुस्त पुलकः सकलरसिक वरनागर तिलकः ।

लीला है, आप कुवलय के (नीलपद्म के समान) समान नील वर्ण के हैं, एवं उन के गुण चरित्र सब कुछ ही सकल युवति को मुग्धकरने वाले हैं । कुञ्चित केश कलाप, चतुःपष्टि कला का अधीश्वर एवं निष्कलङ्क पूर्णाचन्द्र हैं ॥ उनके विपुल कटितट में पीत वसन शोभित है ॥२६॥ कर्णद्वय में मकराकृति कुण्डलद्वय दोदुल्यमान है, महाज्योति तरङ्ग मालामय सुन्दरकपोल गण्ड देश है । मुक्तादि रत्न खचित उत्तरीयवसन है, आप स्मर रस से मधुर लोचन द्वयको नृत्य करारहे हैं ॥२७॥ रत्न एवं तिलक से कपाल रञ्जित, है, कुञ्चित केशदाम, स्निग्ध चञ्चल, एवं कुटिल है । सुन्दर सुन्दर अनेक प्रकार माल्य धारण कर केलि कलारभस से अति रसमय हुए हैं ॥२८-२९॥ महा आनन्दमय वदन में मनोहर हास्य है, कम्बु (रेखात्रययुक्त शङ्खवत्) कण्ठदेश में पदक का विलास नृत्य हो रहा है चूड़ा युवतियों को मुग्ध कर रही है ॥३०॥ विशाल वक्ष में बहुविध मणिमय हार विन्यस्त है, अङ्गद, कङ्कण, की कान्तिमाला प्रकाशित है, सुन्दर नितम्ब में मणिमय रसना मधुरध्वनि कर रहीं है, एवं आप रासोचित अत्युत्तम वसन से शोभित हैं ॥३१॥ चरणों में

प्रत्यङ्गाद्भुत सुषमासिन्धुः प्रतिपदवर्धिमदनरससिन्धुः ॥३२॥
 प्रोद्वेलाद्भुतमधुरिम सिन्धुः प्रकट महारसमयगुणसिन्धुः ।
 मत्तमतङ्गजलङ्घिम गमनः परम रसैक निमज्जित भुवनः ।
 काश्मीरागुरु चन्दनलिप्तः श्यामतनु मणि भूषणदीप्तः ॥३३॥

त्रिभङ्गी दिव्यासस्थित तनु कदम्ब द्रुमतले
 यदा राधा नामाङ्कित मधुर सङ्केत मुरलीम् ।
 निधाय श्रीविम्बाधर वरपुटे नागर गुरु
 जंगी गोद्योऽधावन्न भिकमभितर्ह्यविवशाः ॥३४॥

अथ नीप कल्पतरु मूलगतः कलित त्रिमङ्ग ललिताङ्ग युतः ।
 अरुणाधरे निहितवेणुवरः कल मुज्जगौ स रसिकप्रवरः ॥३५॥
 श्रुत्वा माधवमुरलीनादं तत्क्षणमुज्जित गुरुजनवादम् ।

मणिमय नूपुर की ध्वनि हो रही है, नूपुरों की मणि किरण चतुर्दिक
 में व्याप्त है, कर्ण में रत्न कुण्डल, हात में मणिमय मोहन वंशी विरा-
 जित है ॥३२॥ श्रीराधा के स्मरण से अङ्ग में मुहुर्मुहु उच्च पुलक
 हो रहा है, आप सकल रसिक गण के श्रेष्ठ व नागर चूड़ामणि हैं ।
 इन के प्रति अङ्ग में अद्भुत सुषमा सिन्धु है, एवं प्रतिक्षण में
 इनका मदन रस की वृद्धि होती रहती है ॥३३॥ इन से महा अद्भुत
 माधुर्यसिन्धु उच्छलित हो रहा है, आप प्रकट महा रसमय गुणसिन्धु
 हैं, इनकी गतिभङ्गी मत्तमातङ्ग की भाँति अतिसुन्दर है । आप
 परमरस (श्रृङ्गार) के द्वारा सकल भुवन को निमज्जित कर रहे हैं
 आप कुङ्कुम, अगुरु, चन्दन द्वारा लिप्त देह हैं और मणिमय भूषणों
 से श्रीअङ्ग समुज्ज्वल हैं ॥३३॥ त्रिभङ्ग भङ्गिम रूप में खड़े होकर
 श्रीराधानाम का संकेत युक्त मुरली को सुन्दर विम्बाधर में रखकर
 नागरेन्द्र कृष्णने जब कलध्वनि की, तब ही गोपीगण विवश होकर
 लम्पट चूड़ामणि के निकट आने के लिए अभिसारकिए थे ॥३४॥
 अनन्तर आपने कदम्बके नीचे जाकर त्रिभङ्ग सुन्दर भङ्गी की अङ्गी
 कार किया, अरुणवर्ण अधर पल्लव में वेणुवर को स्थापन कर वह
 रसिक चूड़ामणि कलध्वनि (अव्यक्त मधुर निनाद) करने लगे ॥३५॥

ध्वन्यभिमुख मनुधावित वत्यः प्रतिदिश मभिनव गोपयुवत्यः ॥३६॥
 काश्चिद् ध्यत्यस्ताम्बरभरणाः काश्चन नूपुरक युतचरणाः ।
 अपरा अञ्जितक वर नयनाः का अपि परिहृतनिजपतिशयनाः ॥३७॥
 स्नानमयोद्वर्त्तन मनुलेपं नोविनिवन्धनमार्जनलेपम् ।
 कुर्वत्योऽति जवात् ययुरपराः काश्चिदधाधं प्रसाधिताचिकुरा ॥३८॥
 काश्चिद् गुर्वदिषु भुञ्जानेष्वपि परिवेशं हित्वा याने ।
 चक्रुर्मति मतिखण्डित लज्जाः केवल वांशिक सङ्गमसञ्जाः ॥३९॥
 काश्चन हार ग्रथने सक्ताः सूत्रकरा ययुरत्यनुरक्ताः ।
 मुग्धा दुग्धावर्त्तन निरता ययुरपरा अपिहरिरसभरिताः ॥४०॥
 लोकवेद विधिकृत ममुपेक्षा दूरदलित गृहदेहापेक्षाः ।
 प्रेम महाग्रह गाढगृहीता हरिमभिसल्लुर्बज पुरवनिताः ॥४१॥

माधव की मुरलीध्वनि को सुनकर तत् क्षणान् गुरुजन गणों के परि
 वादादि को परिहार करके अभिनव गोप ललनागण उक्त ध्वनि को
 लक्ष्यकर दौड़ने लगी ॥३६॥ किसी के वेशभूषादि का विपर्यय हुआ
 किसी एक चरण में नूपुर पहना किसीने एवनेत्र में कज्जवल लगाया
 और किसी ने तो निज पतिवी शय्या को छोड़कर ही दोड़ी ॥३७॥
 अपरापर गोपीगण स्नान, उवटन, अनुलेपन, नीविबन्ध एवं गृह देह
 मार्जन लेपनादि करते करते उसका समाधान न करके ही प्रवलवेग
 से धर को छोड़दिये, कोई तो केश प्रसाधन को असम्पूर्ण करके ही
 अभिसार किया ॥३८॥ किसीने गुरु जन को भोजन परोस ने के
 समय ही परोस ना छोड़कर ही अभिसार कर दिया, अहो ! वे सब
 ही महालज्जाशीला होने पर भी केवल वंशीवारी के साथ सङ्गम के
 लिए ही निर्णय कर लिए थे ॥३९॥ किसी ने तो माला निर्माण करते
 समय ही डोरी को हाथ में लेकर ही अनुराग से चल दिया, अन्यान्य
 गोपीगण दूध तपाने में रत होने पर भी मुग्ध एवं हरि रस से पूर्ण
 चित्त होकर अभिसार कर दिये ॥४०॥ व्रजाङ्गनाओं ने लोकमर्यादा
 वेदमर्यादा का सम्यक् प्रकार से उल्लङ्घन किया था । उन्होंने
 देह गेहादि की अपेक्षा को भी विसर्जन करदिया था, केवल प्रेम रूप

गण्डलोलमणि कुण्डल सुषमाः मुक्ताकवरभर विगलित कुमुमाः ।
 विपुल नितम्ब स्तनभर विकलास्तनुरुचि प्रकटीकृतबहुवपलाः ॥४२॥
 उपरि विनिर्मित शतशत चन्द्रमा मध्यरचित चलहेम गिरीन्द्राः ।
 सुविचिहितस्थल पङ्कजवलना रेजुर्दिशि दिशि ता व्रजललनाः ॥४३॥
 नूपुर काञ्ची वलयघटानां झङ्कृत मुखरित सकलदिशानाम् ।
 जङ्गमकनकलतायितवपुषां रेजेराजिः सा व्रजमुदृशाम् ॥४४॥
 युवतीषु या निजपति संभुक्ता देवान्तर्गृहयाता स्ताः ।
 गोपैर्दृढतरपिहिते द्वारे प्रतिहत गतयः पेतुरगारे ॥४५॥
 अशुभं पुरुषान्तर सङ्गकृतं कृत्वा विरहार्त्ता निहतम् ।
 परम महामङ्गल सुनिदानं चक्रमधुपति मधुरध्यानम् ॥४६॥
 शुद्धमहारसचिद्घनदेहा हरिपर वहिरन्तर सकलेहाः ।

महाग्राह से आक्रान्त होकर उन्होंने हरि प्राप्ति के उद्देश्य से ही अभि
 सार किया ॥४१॥ उस समय उनके गण्डदेश स्थित चञ्चल मणि
 कुण्डल की सुषमा प्रसृत हुई, उन्मुक्त केश कलाप से कुसुम समूह
 विगलित होने लगे । वे सब विशाल नितम्ब व स्तन युगल के भार
 से विकल होगये, एवं देह कान्ति के प्रकाश से जैसे अनेकानेक विद्यु
 न्माला को ही प्रकट किए थे ॥४२॥ व्रजाङ्गनागण उपरिभाग में
 (मुख में) शत शत चन्द्रमा का निर्माण कर मध्यदेश में (छाती में)
 चञ्चलायमान सुवर्ण गिरीन्द्र (स्तन युगल) की रचना कर पृथिवी
 में चरण विन्यास से स्थल पद्म को प्रकाश कर विराजित थे ॥४३॥
 नूपुर, काञ्ची, वलय समूह के झनन कार से दिग् वलय भुल्लरित हो
 उठे और व्रज सुन्दरीगण गतिशील स्वर्णलता के सदृश प्रतिभात
 होकर यूथ यूथ में शोभित थे ॥४४॥ गोप युवतीयों में से जो निज
 निज पति के द्वारा संभुक्ता रही, वह देवात् घर में घुस गई थी, उस
 समय गोपों ने जोर से द्वार रुद्ध कर दिया, इस से निरुद्ध गति होकर
 वह घर में गिर गई ॥४५॥ अन्य पुरुष के सङ्ग जनित अशुभ सकल
 हरि की आर्त्ति से विनष्ट हो जाने पर वह परम मङ्गल के सुन्दर
 निदान स्वरूप माधव का ध्यान करने में प्रवृत्त होगई ॥४६॥ उस

सपवि प्राप्ताः प्रेष्ठ पदान्तं ताश्च तदा रुचिरास्तु नितान्तम् ॥४७॥

एवं व्रजवर युवतीवृन्दैः श्याम किशोर मदान्धैः ।

हरिगतिरिन्दिरयापि न दृष्टाप्राप्ति मदन रस मात्र निविष्टा ॥४८॥

न लोकवेद व्यवहारमात्रं न गेहदेह द्रविणात्मजादि ।

यत्राविदं स्ता न पथोऽपथो वा स कोऽपिजीयादिह कृष्णभावः

श्रीवृषभानो निष्कुट याता तद्बुहिता त्रिभुवन विख्याता ।

राधेत्यनुपम रसमयमहिमाशुद्धमहारति मधुरिमसीमा ॥५०॥

स्व स्व विभव सुचमत्कृततनुभिः पुरुषोत्तम शक्तिभिरमिताभिः ।

दूरतरावपि कृतदास्याशा सकल परमसुखकृत परिहासा ॥५१॥

आशंशव मतिमुग्ध प्राया श्यामिकादि कलनाकुल काया ।

समय शुद्ध महारस चिद्घन देह को प्राप्त कर अन्तर बाहर सब कार्य मे ही हरि परायणा होगई एवं सद्य ही प्रियतम के चरण के समीप में उपनीत होकर परम रुचिरता प्राप्त हुई, अर्थात् उनकी निखिल मनोभिलाष पूर्ण होगई ॥४७॥ श्यामल किशोर इस प्रकार प्रेम मदान्ध व्रज युवतीगण के साथ शोभित हुये । अहो श्रीहरि का भाव का दर्शन साक्षात् लक्ष्मी ने भी नहीं किया अथच केवल कामरस निविष्ट गोपी गणों ने उसको प्राप्त किया ॥४८॥ जिस भाव से वश होकर गोपीगण लोक व्यवहार एवं वेद मर्यादा को भूल ही गये थे, जिस भावने गेह देह धन पुत्रादि को विस्मृत करा दिया है, जिस से वे सब ने सुपथ विपथ कुछ भी नहीं जाना है उस अनिर्वचनीय कृष्ण भाव की जय हो, अमरत्व को प्राप्त करे ॥४९॥ अतुलनीयरसमय महिम विशिष्टा, शुद्ध महारति एवं माधुरी की सीमा त्रिभुवन प्रसिद्धा श्रीवृषभानुनन्दिनी राधा अपने उपवन में पधार चूकी है ॥५०॥ निज निज वैभव ऐश्वर्य द्वारा चमत्कार कारि देह धारिणी पुरुषोत्तम के निखिल शक्तिगण दूरतर प्रदेश से ही दास्य रस की आशा करते हैं, अहो ! उन्होंने इस भाव में लुब्ध होकर परम सुख राशि को परिहास ही किया है ॥५१॥ श्रीराधा शंशव से मुग्ध स्वभाव की थी, श्याम

सहज महाद्भुत हर्षनुरागा संव्यवहारमात्र सविरागा ॥५२॥
 स्वप्नेक्षित रमणात्मसमाधिः प्रलपित संजनितात्युपलब्धिः ।
 क्षणमति कम्पा क्षणमति पुलका जडवत् क्षणमाश्रितसह्यका ॥५३॥
 विलसति नवधन आगतमूर्च्छा सभय सभयवोक्षित शिदिपिच्छा ।
 क्षणमत्यर्च्या सुस्वर रुदिता क्षणमपि बहुशः क्षितितललुठिता ॥५४॥
 क्षणमुत् सृजति सकलाभरणं क्षणमति गृह्णत्यालोचरणम् ।
 क्षण मभिधाय यामि यमुनामितिनिगदति वाच्योऽसौ मम नम इति ॥५५॥
 क्षणदुल्लसिता सहसोरुहसिता वित्तदुजोच्छ्वायाश्लेषरता ।
 क्षण मभिदधतीकृतकाकुनति धृष्टोरालि न लज्जय मेति ॥५६॥
 माधव नामरूप गुण गानैश्चित्रपदादिवाकृतिलिखनैः ।
 प्रतिमुहु रपि चाश्वासवचोनिः कथमपि यापितसमयालोभिः ॥५७॥

वस्तु को देखकर ही उन के देह व्याकुल हो जाता था, श्रीहरिके प्रति साहजिक महाद्भुत अनुराग एवं व्यावहारिक वस्तु के प्रति सम्यक् वैराग्य, अनासक्ति उनकी थी ॥५२॥ आपने स्वप्न में रमण श्रीकृष्ण के साथ निज मिलन स्वभाव एवं समाधि (नियम) को दर्शन किया प्रलापसे अतिशय उपलब्धि प्रकट हुई छन में अतिकम्प क्षण में अति पुलक कभी तो जड़ के समान सखी को पकड़ कर रह गई ॥५३॥ नवीन जलधर को देखकर मूर्च्छित होती है, भीत सन्त्रस्त होकर मग्न पृच्छ को देखती है, क्षण में ही अतिशय आर्त्ति से उच्चैःस्वर से रोती रहती है, क्षणके बाद ही पृथ्वीमें गिरकर लीट लगाती रहती है, ॥५४॥ क्षण क्षण में आभरणों को खोल कर फेंक देती है, छन में सखियों के चरण पकड़ती है, क्षण क्षण में मैं यमुना को जा रही हूँ, कहकर, उनकी मेरा नमस्कार कहना यह कहती है ॥५५॥ छन छन में उल्लसित हो उठती है, सहसा जोर से हँस पड़ती है, अपनी छाया को भुजायों को बढ़ा कर दृढ़तर आलिङ्गन करती है । क्षण क्षण में काकुवाद प्रणति कर कहती है, हे धृष्ट ! सखी जन के समक्ष में मुझे लज्जित न करो ॥५६॥ माधव के नाम, रूप एवं गुण गान से चित्रपटादि में उनकी आकृति अङ्कन में प्रति मुहूर्त में सखीगण के

सा श्रुतिगत हरि मुरली सुकलाविकलाऽधावदुपेक्षित सकला ।
 श्याम मिलन रस संभ्रम वलिता प्रति मुहुश्चत् पुलकैर्निचिता ॥५८॥
 रस गरिमोज्ज्वल गौरवरक्षाकार विरचित बहुतर शिक्षा ।
 वारितवत्यपि मन्मथविवशामालिस्तां धृतपाणिः सहसा ॥५९॥
 तासु सकल गोकुल वनितासु प्रणय महासंभ्रम मिलितासु ।
 प्रेक्षा न जीवौषध निज कान्तां प्रायहरिविरहा तुलचिन्तां ॥६०॥

श्रुत्वापि वेणुनिनदं स्वसखीजनेन

सम्मान रक्षण कृते बहुदत्त शिक्षा ।

राधासमागतवती न यदा तदेक

प्राणस्तदा हरिरभूदुरुदुःखचिन्तः ॥६१॥

दर्शित लोकवेद बहुमीतिः प्रिय विनिर्वर्तित युवतीविततिः ।

समवददत्यनुराग रसान्धा हरिपद कृत दृढ़जीव निबन्धा ॥६२॥

द्वारा प्रदत्त आश्वास वाणी को सुनतर ही काल यापन करती रहनी है ॥५७॥ श्रीहरि की मुरली की कलध्वनि कर्णरन्ध्र में प्रविष्ट होते ही अधीर होकर सब बाधा की उपेक्षा करके ही आपने अभिसार किया, श्याम के साथ मिलन रस से सम्भ्रम युक्त होकर प्रति मुहूर्त्त में ही उनके अङ्ग में पुलकावलि विकसित हो रही थी ॥५८॥ रसका गुरुत्व एवं स्वकीय उज्ज्वल गौरव रक्षाके लिए सखियों ने उनको अनेक प्रकार शिक्षा भी दी, किन्तु सहसा ही उनको अभिसार में प्रवृत्त देखकर सखिनें उस काम विह्वल राधा का हात पकड़ लिया ॥५९॥ यहाँपर प्रणय सम्भ्रमसे मिलित गोपी समाज में निज जीवातु रूपा कान्ता को न देखकर श्रीहरि विरह से अतुलनीय चिन्तान्वित हो गये ॥६०॥ वेणुध्वनि को सुनकर भी निज सम्मान रक्षा केलिए सखीजन के द्वारा उपदेश प्राप्त करके भी जब श्री राधा सङ्केत स्थल में नहीं आई, तब राधागत प्राण श्रीहरि अतिशय दुःख से चिन्तित हो गये ॥६१॥ प्रियतम श्रीकृष्णने लोक वेद मर्यादा लङ्घन से उत्पन्न भय का प्रदर्शन किया, और उनके साथ मिलित होनेके मना करदिया

विषमित्र सकल विषय मपहाय त्वत्पदमाश्रितमतुलमुक्ताय ।
 प्रेष्ठतमाखिल मर्म कृपाणीं मा वद मावद निष्ठुरवाणीं ॥६३॥
 सकलेन्द्रिय मनसामनिवृत्तिः प्रिय ! भवतैक हृताखिल वृत्तिः ।
 कोन्विह लोकः कः परलोकः क्व तदा स्मरणं क्वनु वा करणम् ॥६४॥
 यद्यनिवृत्ति प्रविशति लोकः परयासह्य नरकमिकरौकम् ।
 कोऽपि तदपि किनु तव चरणांशं प्रत्यपि कुरुतेहन्त जिहासाम् ॥६५॥
 तच्चरणांभुज मकरन्दाशा यद् हृदि समभूत सहज विलासा ॥
 दर्शय परम महामय लोभानहहस्वात्मनि भवति विशोभा ॥६६॥
 पति सुत गेह स्वजन धनाद्यं त्यक्तं वास्ता वदखिलमवदम् ।
 पुनरपि दुःसहमपि तत् स्मरणं तव यदि न कृपावरमिह मरणम् ॥६७॥

तव आनुराग से अन्ध प्राय, एवं श्रीहरि चरणों में निदिङ्ग रूप से
 प्राण समर्पण कारिणी युवतीगण श्रीकृष्ण को कहने लगीं (६२) हे
 प्रेष्ठतम ! हमने सब विषयों को विप के समान त्यागकर निरुपम सुख
 के लिए तुम्हारे चरणाश्रय किया है, इस समय मर्मघातक निष्ठुर
 वाक्य मत बोलो मत बोलो !! ६३॥ हे प्रिय हमारे इन्द्रिय एवं मन
 की निवृत्ति किसी से नहीं होती है, कारण तुमने सब को हरणकर
 लिया है । हमारे इह लोक और परलोक ही क्या है, तब कहाँ
 किस का स्मरण, और वहाँ किसका करण, अर्थात् इन्द्रियादि की
 चेष्टा कहाँ होगी ॥६४॥ यदि कोई व्यक्ति परम असह्य नरक समूह
 में निवृत्ति रहित होकर प्रवेश करता है, हाय ! तथापि क्या वह
 तुम्हारे चरण प्राप्ति की आशा को छोड़ सकेगा ॥६५॥ तुम्हारे चरण
 पद्म मधु प्राप्ति की आशा स्वाभाविक रूपसे हमारे हृदय में विराजित
 है, अब तुम महाभय एवं लोभ दिखाला रहे हो । अहो ! तुम्हारे
 निज, स्वभाव में यह आचरण बहुत ही विसदृश मालूम पड़ रहा है
 ॥६६॥ हमने पति पुत्र गृह स्वजन धनादि धृणित वस्तु को वान्तवन्
 (वमनके समान) ही त्याग किया है, पुनर्বার उसकी बातोंका स्मरण
 करने पर भी दुःख होता है । यदि तुम्हारी कृपा नहीं मिलती तब
 हमारे लिए मृत्यु ही श्रेयस्कर है ॥६७॥ तुम्हारे चरण रज से धन्य

त्वत्पद पङ्कज रजसा धन्ये त्यक्त्वा तनुमिह वृन्दारण्ये ।
 प्राप्स्याम स्त्वां ध्रुवमभिरामं त्यज दुरवग्रहनागर कामम् ॥६८॥
 प्रेमोत्कण्ठय सगद् गदमित्थं व्रजतरुणीमुख चन्द्रसमुत्थम् ।
 पीत्वा वचन सुधा रस सारं राधापतिरिदमवददुदारम् ॥६९॥

चन्द्रावली प्रभृति सर्व विदग्ध गोपी

वृन्देऽपि संमिलितवत्यति मन्मथान्धे ।

श्रीराधिका विरहदीन उपेक्ष्य पूर्वम्

पश्चादनन्य विषयान्ययुनक् प्रियार्थे ॥७०॥

अति निर्भरतर मदभाववती नहिमुपेक्षेकथमपिभवतीः ।

किन्तु विना मम जीवन राधां कृन्तति किमपि च नान्तर बाधाम् ॥७१॥

तद्दयिता रचयत बहुयत्नं सा मम कण्ठविभूषणरत्नम् ।

भिलति यथा न चिरेण भवत्यः साधु तथा विदधत्वतिमत्यः ॥७२॥

इस वृन्दावनमें देहत्याग करके निश्चय ही अभिराम रमण तुमको हम सब प्राप्त करेंगे । हे नागर ! हे दुरवग्रह ! ' मनोरथ परि पूरण में प्रतिबन्ध दाता ' तुम इस को छोड़ो ॥६८॥ व्रजाङ्गणा के मुख चन्द्रनिर्गलित इस प्रकार प्रेमोत्कण्ठा जनित गद्गद् वाणी रूप मनोरम सुधारस निर्यास को पानकर श्रीराधा नायक कहने लगे ॥६९॥ चन्द्रावली प्रभृति सर्व विदग्ध गोपीवृन्द सम्मिलित होने पर भी श्री राधिका के विरह कामरस से अतिशय अन्ध दीनचित्त श्रीकृष्ण ने पहले उन सब की अपेक्षा की पीछे उनसब को अनन्य जानकर प्रियतमा के लिए विनियोग किया ॥७०॥ तुम सबने मेरे साथ दृढ़ तम प्रेम किया है, अतएव मैं किसी प्रकार से भी तुम सब की उपेक्षा नहीं कर सकता हूँ । किन्तु मेरा जीवन स्वरूप राधा को छोड़कर मेरे हृदय पीड़ा की शान्ति किसी प्रकार से नहीं हो रही है ॥७१॥ अतएव ! हे दयितागण ! तुम सब महामति हो, बहुविध प्रयत्न करो, जिस से अचिरकाल में ही वह राधा मेरे कण्ठ की भूषणमणि हो जाय ॥७२॥ अनन्तर श्रीकृष्ण ने अति आनन्दित व्रज वालागण

अथ स विचार्य व्रजवनिताभिः कापिनिपुणमतिबुदिताभिः ।

प्रहिता द्रुतमुपवन गत राधां सनुपेत्याह वलत्स्मरवाधाम् ॥७३॥

श्रीवृषभानु भवन मणिमञ्जरि राधे ! जन नयनामृत लहरि !

कवापि न लोके कवापि तुला ते व्रजजन भाग्यात् परमिह जाते ॥७४॥

अयि मयि कृपयाऽपाङ्ग मुदञ्चय सेश्वर विश्वं मद्वशतां नय ।

स्नेहावेश गलज्जल नयने ! क्षणमवधानं कुरु ममवचने ॥७५॥

परमरसे तव यदपि निमग्नं क्वचिदपि भवतिमनोनहि लग्नम् ।

तदपि महाकरुणाद्रं प्रकृते ! श्रवणं देहि मनाङ्गममगदिते ॥७६॥

एकः श्यामलदिव्य किशोरः श्रीश प्रभुश्च मनोमणि चोरः ।

अस्ति व्रजवृन्दावन सेवी तं लभते कापि न देवी ॥७७॥

कलादिक वरतरुणीवृन्दैः सतत विभृग्यः कृतनिरवन्धैः

स तव पदाम्बुज परिमल लुब्धः षट्पदइव विभ्राम्यतिभुग्धः ॥७८॥

के साथ पशमर्श करके एक सुनिपुणा गोपी को दूनी बनाकर राधाके पास भेज दिया, वह गोपी द्रुतगति से उपवन स्थित राधा के समीप मं जाकर, उनको काम पीड़ा से अधीरा देखकर कहने लगी ॥७३॥ हे वृषभानु राज भवन की मणि मञ्जरि ! हे श्रीराधे ! हे जनगण नयनामृत लहरि ! चतुर्दश भुवन में कहीं पर तुम्हारी उपमा नहीं है किन्तु व्रज जगगण के भाग्य से ही तुमने यहाँपर जन्म लिया है ॥७४॥ अयि राधे ! कृपाकर के मेरे प्रति एकवार अपाङ्ग निक्षेप करो । एवं लोक फालगण के साथ समग्र विश्व को वाध्य करो । स्नेहावेश से तुम्हारे नयन से अश्रुधारा विगलित हो रही है, हे राधे । क्षणकाल के लिए मेरा वाक्य में मनोनिवेश करो ॥७५॥ हे परम रस रूपे । यद्यपि तुम्हारा मन कहींपर नहीं लगरहा है, किसी परम रस में निमज्जित नहीं होता है, तथापि हे महा करुणाद्रंचिते ! एकवार मेरी बात को सुनो ॥७६॥ लक्ष्मी पति प्रभृति सब के मनोमणि चोर एक श्यामल दिव्य किशोर है, आप व्रज विपिन का ही सेवक हैं, कोई भी देवी उनको प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं ॥७७॥ लक्ष्मी प्रभृति महा तरुणी वृन्द, निर्वन्ध के साथ सतत् उनका सङ्ग को ढुँढ़ती रहती हैं,

राधे ! तस्यतुतत्त्व रहस्यं त्वच्छ्रुति मूनेः। तस्यमवश्यम् ।
 यत् केनापि कदापि मनागपि ना दृश्यत पराभवदृशापि ॥७६॥
 केवल काम रसात्मक एव केवल मधुर किशोरक वेषः ।
 केवल गोप युवति रति तृष्णः परमधुरिष्ठा नाम्ना कृष्णः ॥८०
 कामपि गोपीमपि कामयते न खलु रमाधारमणीमनुते ।
 गोकुल मखिलमसौ दिन रजनी विचिनोतिक्वन्तु का नव रमणी ॥८१
 बलतश्छलतोरन्यैरपि योगैः साधितगोपवधूसंभोगैः ।
 निरवधि कामाम्भोवैः पारं गच्छन्नस्ति कञ्च एवारम् ॥८२
 तत्र तु स्निग्धजनानुग्रहतस्तस्या कारान्तरमपि दधतः ।
 प्राप्य रहसि नव तरुणी निकटं तन्निज रूप मुदंक्षिप्रकटम् ॥८३
 किं बहुनागरीते स्तस्याप्यंक्षिशुत्वानुकृतेः ।

किन्तु प्राप्त नहीं होते हैं । वह किशोर मणि तुम्हारे पाद पद्म की
 परिमल से लुब्ध भ्रमरकी भाँति अति मुग्धचित्त से इधर उधर भ्रमण
 कर रहें हैं, अथवा विभ्रम ग्रस्त है ॥७८॥ हे राधे ! उनके तत्त्व,
 तुम्हारे कर्ण मूल में अवश्य ही निवेदनीय है, अहो ! परभाव दर्शन
 कारी, केवल्य अथवा मुक्ति धामनिरीक्षक, अत्युत्कृष्ट भाव पर्यवेक्षक,
 कोई भी महाजन कभी भी बिन्दु मात्र भी उसतत्त्व का अनुभव नहीं
 कर कर पाये हैं ॥७९॥ आप केवल काम रस स्वभाव, केवल मधुर
 किशोर वेश, एवं केवल गोपीगण की रति तृष्ण रति लम्पट हैं ।
 उनका परम मधुर नाम ही श्रीकृष्ण है ॥८०॥ आप जिस किसी
 गोपी को चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मी प्रभृति सुन्दरी गण को कभी भी मन
 में स्थान ही नहीं देते हैं, दिनरात समग्र गोकुल में धूमधुस कर देखते
 हैं, कहाँपर कौन नव युवति है ॥८१॥ बल से और छल से एवं
 अन्यान्य उपायों से कौनव्यक्ति ऐसा है जो गोपवधूगणके साथ निरन्तर
 सम्भोग क्रीड़ा करके कामसमुद्र का पार में यथेच्छगमन करने में
 समर्थ हुआ है ? ॥८२॥ सिन्धु सखीजन की कृपाप्राप्त करने के लिए,
 एवं कभी तो अन्य रूप धारण कर निर्जन में नव तरुणी के समक्ष में
 आकर निज रूप प्रकट करने के लिए भी इन को देखा गया है ॥८३

गोप्योत् सङ्गोऽधररसलौत्यं कुच कोरकमनु करचाञ्चल्यम् ॥८४॥

स हि नव किशोरीदर्शं व्रजवीथ्यादिष्वकृत विमर्शम् ।

लुञ्चित कञ्चुक कुचयुगर्दः श्लिष्यति चुम्बतिसहसामस्तः ॥८५॥

सुतयामिलति मिलत्यपि वध्वामिलतिभगिन्याप्यथपथिरुद्धा ।

तदपि महामोहन वदनेका स्थगिततस्यू बल्लवमुत्थयाः ॥८६॥

काश्चिद् वशयति काम कलाभिः का अपि नृत्यगीत विद्याभिः ।

काश्चन तरली कुरुते मुरली वादनलुरलीभिर्वनमाली ॥८७॥

काश्चन तत्पति वेशविनोदः काश्चिद्ग्रहभीत्याद्यपनोदः ।

काश्चन दूतिकया बहुमानैः काश्चिद् वंशीहारण धरणैः ॥८८॥

काश्चित् स्वयमनुनयनैर्धन्या द्यूत जितास्तत् पतित स्वग्याः ।

आकर्षति काश्चन मन्त्राद्यैः काश्चन चौरहार हरणाद्यैः ॥८९॥

अधिक क्या कहें ? शिशुत्व का अनुकरण कर (अर्थात् स्वभाव में किशोर होकर भी वयस में शिशुरूप धारण कर) बहुविध नागर कला वित् कृष्ण गोपीजन गणके को वृद्धेश में अवस्थान करते हैं, एवं उनके अधर सुधापान के लिए चाञ्चल्य प्रकट करते हैं । एवं कुच कोरक स्पर्श के लिए भी हात को नञ्चन करते हैं ॥८४॥ व्रज के पथ में नव किशोरी को देखकर ही कुछ भी न सोचकर कञ्चुक अपसारण प्रभृति करते रहते हैं, सहसा मत्त होकर आलिङ्गन चुम्बनादि करते रहते हैं ॥८५॥ किसी की कन्या के साथ, वधू के साथ भगिनी के साथ मिलन लीला करते रहते हैं । श्रेष्ठ गोपगण इनका पथरोध करने पर भी इनका महामोहन वदन को देखकर सब मुग्ध हो जाते हैं ॥८६॥ वन माली किसी को काम कलादि के द्वारा किसी को नृत्यगीतादि के द्वारा वशीभूत करते हैं और किसी को मुरलीवादन रूप शराघात से चञ्चलायित करते हैं ॥८७॥ किसी किसी रमणी को पति वेश धारण कर आनन्द देते हैं, किसी का ग्रहभय विदूरित करते हैं, किसी को दूतीद्वारा दानमान प्रदान करते हैं, एवं अपरापर गोपीगण को वंशी वादन द्वारा वशीभूत करते हैं ॥८८॥ किसी को अनुनय करके, किसी को द्यूत क्रीड़ा से किसी को मन्त्रादि के द्वारा,

वनमु वि पुष्पावचयन सत्ताः काश्चन चौर्यरोपाद् मुक्ताः ।

अन्याश्चित्रेक्षण कुतुकेन भीषण जन्तुरूप भजनेन ॥६०॥

देवनटी रूपाचरणेन मोहयतीन्द्र जाल रचनेन ।

अन्या स नयन् यमुनापारं रतिमेधातरमासोदारम् ॥६१॥

गोकुल कुलज वधूटि कया सह न कया सङ्गतिरस्यवभूव ह ।

उन्मद मदन रसैक प्रकृते स्तदपि मनोऽस्य न निवृत्तिमयते ॥६२॥

स कदाचिन्नव वृन्दाविपिनं प्राविशेदेकः स्मररसः सदनम् ।

क्वापि कदम्बतले स्मरखिन्नः सुप्तस्तत् प्रशमन निविण्णः ॥६३॥

स्वप्ने दर्शनमस्य त्वमगा लीलाखेल पराद्भुतरसदा ।

किमपि च लज्जानत वदना सा गदित वतीमधुरंसविलासा ॥६४॥

किं कथये त्वां जीवितनाथ ! राधात्वत् प्रेमेव ननाथ ।

त्वन्तु व्रजयुवतीभि विहरसि मां निजकात्तां नैव स्मरसि ॥६५॥

वश कर, किसी के वस्त्र हार प्रभृति की चोरी करके सम्भोग करते हैं ॥६६॥ वन प्रदेश में किसी गोपी को पुष्प चयन में आसक्त देख कर कृष्ण उसको चोर अपवाद देकर, और किसी की विचित्र जन्तु दिखाकर भय उत्पन्न करके सम्भोग करते हैं ॥६७॥ कभी तो देव नटी का रूप धारण कर इन्द्र जालविद्या से किसी को मुग्ध करते हैं, किसी को यमुनापार करने के लिए नाव और नाविक वनकर किराय भाड़ा मांगते रहते हैं ॥६१॥ किस गोकुल वाला के साथ कृष्ण का सङ्गम नहीं हुआ है ? किन्तु उन्मद मदन रस स्वभाव कृष्ण का मन परम शान्ति प्राप्ति नहीं किया है ॥६२॥ किसी एक समय में श्रीकृष्ण अकेला ही स्मररस मन्दिर नव वृन्दावन में प्रवेश किए थे, कामशर से खेदान्वित एवं उसका प्रशमन के लिए निर्वेद युक्त होकर किसी कदम की नीचे सो गए थे ॥६३॥ लीला विलास परायण, अद्भुत रसदायिक तुमने उनके स्वप्नके मध्य में उदित होकर लज्जा नम्रवदन और विलास भङ्गी से सुमधुर स्वर से उनको कहा था ॥६४॥ हे प्राण नाथ ! मैं और क्या कहूँगी ? राधा तुम्हारे पास प्रेमभिक्षा कर रही हैं । तुम तो व्रज युवतीगण के साथ विलास कर रहे हो,

इत्याकर्ण्य परम रससारं त्वद् वचनामृतमसमोदारम् ।
 यावत् पुरुषं पदयोः पतितं तावज्जागरितीभुविजुठति ॥६६॥
 तदवधि परमाविष्टः स युवा व्रजनथ वृन्दावन मन्यद्वा ।
 राधारारधेत्यविरत जापः प्राटति राधाध्याय्युस्तापः ॥६७॥
 प्रथमोद्देशं तव सुसखीतः श्रुत्वा तद्भावं च प्रतीतः, ।
 अन्योपायं मिलनमपश्यत् वंगुरवं स्त्वाह्वयदति हृष्यन् ॥६८॥
 तांतु महाभोहनमुरलीध्वनि माकर्ण्यैव लोकनिगमाध्वनि ।
 दृढतर हेयधियो व्रजवनिता आययुरस्यान्तिकमपि न मताः ॥६९॥
 अपि न कटाक्ष निरीक्षण मासु त्वत् प्रणयी कुरुतेऽनुरतासु ।
 अनिशमयैवाद् भुत रसभावं खिन्नं स्त्वत् पदनूपुररावम् ॥१००॥
 पश्यन्नपि स न पश्यति किञ्चित् शृण्वन्नपि न शृणोति स किञ्चित् ।

निज प्रेयसी मुञ्ज को स्मरण ही नहीं करते हो ॥६५॥ परम रस
 निर्यास रूप तुम्हारे इस अनुलनीय मनोहर वाक्यामृतको श्रवण द्वारा
 पानकरके जब श्रीकृष्ण जोर जोर से रो रो कर तुम्हारे पैर में गिर
 गए थे, उसी समय नींद टूट जाने पर जागकर भूमि में लौट लगाने
 लग गए ॥६६॥ उसी समय से ही वह युवा किशोर परमाविष्ट होकर
 व्रज में वृन्दावन में एवं अन्यत्र ' राधा ' राधा ' नाम अविरत जप
 करते करते घूम रह हैं ॥६७॥ तुम्हारी किसी प्राण प्रिया सखी के
 समीप में तुम्हारा प्रथमोद्देश प्राप्त कर एवं भाव को अनुभव कर
 आपने निश्चय किया कि अन्य उपाय से मिलन होना असम्भव है,
 अतएव आनन्द चित्त से वेणु ध्वनि से ही तुम्हें बुलाने का प्रयत्न वह
 कर रहें हैं ॥६८॥ वह मनो मोहन की मुरली ध्वनि को सुनकर ही
 लोक मार्ग में और वेद मार्ग में दृढतर हेयबुद्धि स्थापन कर व्रजवाला
 गण उनके निकट आए हैं, किन्तु श्रीकृष्ण ने तो उन सब को कुछ
 भी आदर नहीं किया ॥६९॥ तुम्हारे प्रणयी ने उस अनुरक्त सबला
 गण के प्रति कटाक्षपात भी नहीं किया । कारण वह अद्भुत रस
 भाव जनक तुम्हारे पद नूपुर की ध्वनि को न सुनकर खिन्न हुआ है
 ॥१००॥ आप कुछ देखकर भी नहीं देख रहे हैं, सुनकर भी नहीं सुन

त्वामनु चिन्तयते व्रजनाथः सन्तत विहित त्वद्गुणगाथः ॥१०१॥
 क्वासि प्रेयसि ! हा हा राधे ! मय्यनु कन्पां कुरुषुवाधे ।
 स्मृत्वा मामुपयाहि त्वरितं वृन्दाविपिनं कुरुमुख भरितम् ॥१०२॥
 अथवा सहज सुख वत्सल हृदये नायास्यसि कथमनुगत सदये ।
 तिष्ठसि कुञ्ज क्वापिनिलीना रीतिरियं तव सुरस धुरीणा ॥१०३॥
 एवं प्रलपति बहुधा कृष्णस्त्वत् सङ्गम रसमात्र सतृष्णः ।
 त्वामुपनीय ध्यानात् पुरतः स भवति रसमय चेष्टानिरतः ॥१०४॥
 चन्द्रावल्याद्यखिलमनोज्ञ व्रजवर रामा अपि स रसज्ञः ।
 कृतचातूक्तीः पश्यति न दृशा श्वसिति परं तव रतिरससुतृषा ॥१०५॥
 नान्य तरुण्या वार्त्ताः कुरुते नान्यादत्तं पिबति न भुङ्क्ते ।
 अन्या स्पर्शन दर्शन विरुचि स्त्वत्परतायामास्ते स शुचिः ॥१०६॥

रहे हैं, अर्थात् उस उस विषयों में मनोनिवेश नहीं करते हैं, वह व्रज
 नाथ केवल आपकी चिन्ता में मग्न हैं, और निरन्तर आप की गुण
 गाथा का कीर्तन करते रहते हैं ॥१०१॥ हे प्रेयसि ! राधे ! तुम
 कहाँ हो ? तुम्हारी बहुत बाधा विपत्ति है, मैं जानता हूँ, तथापि
 कृपाकरो ! मुझे स्मरण कर एकवार शीघ्र वृन्दावन में आकर सबको
 सुख पूर्ण करो ॥१०२॥ अथवा तुम तो सदा ही स्निग्ध हृदय के हो,
 तुम तो मादृश अनुगत जन के प्रति सदा ही सदय हो, व्रज विपिन में
 क्यों नहीं आओगी ? मैं समझ गया हूँ, तुम किसी कुञ्ज में छिप
 कर रहो, तुम्हारी रीति सुन्दर तो है ही, रसमयी भी है ॥१०३॥ इस
 प्रकार तुम्हारे सहित सङ्गम रस में तृष्णा शील कृष्णचन्द्र बहुधाः
 प्रलाप करते रहते हैं, ध्यान से तुम्हें सम्मुखीन कर आप रसमयचेष्टा
 में डूबे हुये हैं ॥१०४॥ चन्द्रावली प्रभृति निखिल मनोज्ञ युवति गण
 अनेकानेक प्रिय वचन कहने पर भी रसज्ञ कृष्ण उन सब को आख
 उठाकर भी नहीं देख रहे हैं । वरं तुम्हारे साथ रति पिपासु होकर
 लम्बी श्वास ही ले रहे हैं ॥१०५॥ अन्य किसी भी रमणी की बात
 नहीं सुनते हैं, दूसरे से दी हुई भोजन पान की सामग्री को ग्रहण नहीं
 कर रहे हैं । अन्यान्य गोपीयों के दर्शन, स्पर्शन, में उनकी बड़ी

विलपत्यति करुणं तव बन्धु धृतवाष्पौघो युवति मुखेन्दुः ।

स्थिरचर सत्त्वान्यपि चक्रन्दुर्वृन्दा विपिनमश्रुजल सिन्धु ॥१०७॥

शोषं नेप्यति हरिवगुरुष्मा तववृन्दावनमथरुचिराश्मा ।

केलिंगिरि रते द्रवतो यायात् प्लावितमखिलं वाश्रमसूयात् ॥१०८॥

सकलं श्रीमद् वृन्दाविपिनं सकलं गोकुलमपि च व्यसनं ।

परम दुरन्तमद्य सम्पति सकल प्राणधने परिधीदति ॥१०९॥

तदुरुनितम्वे न कुरु विलम्बं चल सखि ! कृतमन् पाष्यवलम्बम्

मदकल कादम्बक निबुरम्बं तव गति भङ्ग्या भजतुविडम्बम् ॥११०॥

अथदुर्धरतर मन्मथ बाधा किमपि गदितुमशक्नहि राधा ।

तद्दयितालि बहुरस वलिता गिरमति ललिता मददल्ललिता ॥१११॥

चल सुन्दरि ! किं बहुवचनेन वयमति तृप्ताः कृष्णगुणेन ।

यैरनुभूतं तस्य न चरितं तच्छ्रवणं कुरु तद्गुणभरितम् ॥११२॥

अरुचि हो गई है, किन्तु तुम्हारे प्रति एकान्त निष्ठा को प्रकटकर परम पवित्र हो गये हैं ॥१०६॥ तुम्हारे बन्धु, अति करुण स्वर से विलाप कर रहा है, हे युवति राधे ! उनका मुख वाष्प धारा से नहा रहा है, स्थावर, जङ्गम प्राणी निचयों के रोदन से वृन्दावन आसुयों का सागर बन गया है, ॥१०७॥ श्रीहरि का देह ताप सब वृन्दावन को सुखा देगा, और मनोज प्रस्तर खण्ड शोभित तुम्हारे केलि गिरि-गोवर्द्धन पर्वत भी पिघल जावेगा, अथवा सब व्रजमण्डल आसुयों की वाढ़ के चपेट में आजायेगा, ॥१०८॥ सब के प्राणधन श्रीकृष्ण विषण्ण होनेपर आज समग्र वृन्दावन समग्र गोकुल परम दुरन्त विपदा क्रान्त हैं ॥१०९॥ अतएव हे गुरुनितम्बिनि ! और देरी मत करो । हे सखि ! मेरा हात पकड़ कर अभी चलो, तुम्हारी गति भङ्गी को देखकर मदकल कलहंस निचय विडम्बना को प्राप्त करके लज्जित हो जाय ॥११०॥ अनन्तर दुःसहतर मन्मथ पीड़ा से आक्रान्त होकर श्रीराधा कुछ भी कहनहीं सकी । तब उनकी प्रियसखी प्रिय सहचरी बहुरसमयी ललिता अति ललित मनोज वाक्य से बोली ॥१११॥ हे सुन्दरी ! अभी ही इस स्थान को छोड़ो । बात करने की आवश्यकता

वक्त्रिमशालि श्यामल वपुषः का ऽऽस्था ऋजुशुचितायां मनसः ।
 कृत्रिम एव प्रेमविकार स्तस्य मृषा वा त्वद् व्याहारः ॥११३॥
 पश्य दूति ! बहु बल्लभ एष ब्रज पुरत तरुणी मोहनवेशः ।
 वेणु ध्वनि हृतगोपीवृन्दः कथमिह सख्य। मम सुखगन्धः ॥११४॥
 मनुते यदि दयिता गणमुख्यां स मम सखीं निज परमाभिख्यान् ।
 तत् कथमादौ न तथा मिलितः प्राप्तानुज्ञोऽन्याभिर्न युतः ॥११५॥
 तदलमलं कपटैक परेण प्रकटित मिथ्याप्रेम भरेण ।
 तेन दिनद्वयमेकी भवता पुनरथ परमौदास्यं भजताः ११६॥
 किञ्चास्माकं कण्ठ गतेषु प्राणेष्वन्यां ब्रजवरतनुषु ।
 राधाभर्ता कथमिव शयनं नेष्यति धन्यामपि कृतकरुणन् ॥११७॥
 तत् लक्ष्मीपति मोहन्यपि का ब्रजभुव्यस्मत् सख्यनुचरिका ।
 भवितु योग्या सह तत् पतिना यानिर्लज्जा कृतिरति कलना ॥११८॥

क्या है ? हम सब कृष्ण गुण से अच्छीतरह सुतृप्त हैं, उनके चरित्र का अनुभव जिनका नहीं हैं, उनके कान में ही कृष्ण गुण गान करवाओ ॥११२॥ त्रिभङ्ग भङ्गिम श्यामल सुन्दर को मन की सरलता और पवित्रता में क्या विश्वास है ? उनका प्रेम विकार कृत्तिम हो सकता है, अथवा तुम्हारा कहना झूट है ॥११३॥ देखो दूति ! कृष्ण बहु बल्लभ है, उनका वेश भी गोकुल युवतियों को मुग्ध करने वाला है, उन्होंने वेणुध्वनि से तो गोपीगण को ही आकर्षण किया है । इस से मेरी सखी कैसे सुखी हो सकती है ॥११४॥ यदि मेरी सखी को प्रियागण मुख्या मानते हैं, परम शोभा विधायिनी, कीर्त्तिदायिनी मानते हैं तब पहले इनके साथ क्यों नहीं मिला, अथवा इनका आदेश क्यों नहीं लिया गोपी सङ्ग करने के लिए ? ॥११५॥ अतएव उस परम कपट शिरोमणियोंके साथ, मिथ्याप्रेम प्रकट करनेवाले के साथ सम्पर्क स्थापन करना हम नहीं चाहते हैं, उस से कोई लाभ नहीं है अहो, वह तो दो दिन राधा से मिलेगा इस के बाद ही उदासीन हो जावेगा ॥११६॥ दूसरी बात है, हमारे प्राण कण्ठ-गत होने पर भी श्रीराधारमण, ब्रज की दूसरी नारी को अपनी सेज में लेजाते हैं ॥११७॥

गत्वा सर्वमिदं वं वं य कामुक मुकुटर्जणि सखि ! सुखय !
 स सुखं विहरतु सहवदुराम स्तादृश निकटं न वयं यामः ॥११६
 क्रीडति स बहु कपट नाटिक या मुग्धव्रजपुर युवतीघटया ।
 सुमुखि ! वयन्तदनुरागमनन्यं विभ्रतमेव भजामो धन्यम् ॥१२०
 राधैकान्तिकभावो न भवेत् स यदि तदास्यां सङ्गति विभवे
 अस्तु निराशो मम तु सखीयं तादृशहृद् गमयतुलमयम् ॥१२१
 तत आगत्य तथा परि कथिते सकले राधाजीजनलपिते ।
 गोपीवेशस्थगित समाजः स्वयमचलाच्छीव्रजयुवराजः ॥१२२

दूतीगिरापि च यदा वृषभानु पुत्रो
 नैवागता रसविलासविधौ विदग्धा ।

गत्वा तदा स्वयमसौ युवती सुवेश

स्त्वां प्रेमविह्वलतनुं हरि रानिनाय ॥१२३॥

व्रजवन में ऐसा कौन नारी है, लक्ष्मी ही चाहे श्रीनारायण की छाती
 में रहने वाली हो, मेरी सखी की अनुचरी हो सकती है ? वह नारी
 निर्लज्ज है, इसलिए कृष्ण के साथ उसने सुरत क्रीड़ा की है ॥११८॥
 सखि ! तुम कामुक चूड़ामणिके पास जाकर यह सब कह कर उनको
 सुखी करो । वह बहुकान्ता लेकर सुखी वने, हम सब उस कपट शिरो
 मणिके पास नहीं जाऊँगी ॥११९॥ वह बहु कपटता करके व्रजवधूयोंके
 साथ विहार करता है, हम सब एकान्त अनुरागी धन्य प्रेमिक जनका
 ही भजन करूँगी ॥१२०॥ यदि आप श्रीराधा में अनन्यनिष्ठा
 नहीं रखते हैं तो इस के साथ सङ्गम की आशा छोड़ ही दें । और
 मेरी सखी भी उक्त प्रकार रति को हृदय में रखकर कालयापन करें
 ॥१२१॥ अनन्तर दूती लौट आई और सखी की बात को कहदी,
 तब व्रजराज स्वयं युवतिवनकर नारी समाज को विस्मित करके
 राधाके और चलदिये ॥१२२॥ जब रसकला विदग्धा वृषभानु-
 नन्दिनी दूतीवाक्य को सुनकर भी श्याम सुन्दर के पास नहीं आई,
 तब श्रीकृष्ण युवति का सुन्दर वेश धारण कर उस प्रेमोन्मत्ता राधा

द्रुतमिव स गतो राधारामं तद्गुण चरितं परमाभिरामम् ।
 शिरसि निहित तच्चरण परागः प्राह ललितमतिवलदनुरागः ॥१२४॥
 अहह ! महाद्भुतभाग विपाके तवपदमति दुर्लभमपिनाके ।
 अद्य दृशाति तृषा परिवष्टं स्पृष्टं जनिकल मखिलं जुष्टम् ॥१२५॥
 तव पद पङ्कज नखमणि चन्द्र ज्योतिः प्रतराद्दिशिदिशिसान्द्रः ।
 स्वानन्दामृत सिन्धुरपारः स्यन्दत एवाद्भुत रससारः ॥१२६॥
 आश्चर्या ते रूप चमत् कृति आश्चर्या ते रुचिरच्छलति ।
 आश्चर्या ते मधुर वयः श्रीलस्यै हरिरपि मूर्च्छति स श्रीः ॥१२७॥
 जन्मनि जन्मनि दास्याअपि ते दास्य पदाशां का न हि कुरुते ।
 आस्तामपरं श्याम रसोपि त्वत्पदकमले लभ्यः कोऽपि ॥१२८॥
 कोऽयमहो मम भाग विशेषः बलितो गलित स्तर्कोऽशेषः ।
 यदिह मया गतया हरि कार्ये प्रापि परश्चिन्तामणिरार्ये ॥१२९॥

१ को रास मण्डलमें ले आए ॥१२३॥ और श्रीराधाके गुण चरितादि को
 गाते गाते परम रमणीय श्रीराधिका की कुञ्ज बाटिका में पहुँच गये,
 एवं श्रीराधा के चरण धूली माथे में लेकर प्रबल अनुराग से मिठी
 मिठी वाणी से बोलने लगे ॥१२४॥ अहो ! आज महा अद्भुत भाग्य
 से स्वर्ग में दुर्लभ तुम्हारे चरण कमल को विपासित नयन से दर्शन
 कर स्पर्श किया, निखिल जन्म का फल आज ही करतल गत हुआ ।
 ॥१२५॥ तुम्हारे पादपद्म के नखमणि चन्द्र समूह की ज्योति से सब
 और निविड़ अद्भुत रस निर्यासमय अपारावार स्वानन्दामृत सिन्धु
 प्रवाहित हो रहा है ॥१२६॥ आश्चर्य तुम्हारे रूप चमत्कृति आश्चर्य
 है, तुम्हारे कान्ति कन्दली का प्रसरण, आश्चर्य है, तुम्हारे मधुर
 वयस की शोभा समृद्धि, अहो तुम्हारे नृत्यसे लक्ष्मीके साथ नारायण
 भी मूर्च्छित होते हैं । अथवा परम मनोज्ञ हरि श्यामसुन्दर भी तुम्हारे
 भावाश्रय नृत्य को देखकर मुग्ध होते हैं ॥१२७॥ अहो ! कोन रमणी
 ऐसी होगी, जो जनम जनम में तुम्हारी दासी का दास्य प्राप्त करने
 की इच्छा नहीं करेगी ? अधिक और क्या कहूँ-उज्ज्वल श्यामरस भी
 तुम्हारे चरण कमल से ही मिलता है ॥१२८॥ अहो ! मेरा कैसा

रमयाप्यतिदुर्लभपदरजसां मृग्यो निरवधि गोकुल मुदशाम् ।
 वृन्दावन विधुरपि तत्रदासी भागकलायाश्चिरमभिलाषी ॥१३०॥
 नापेक्षा मम मोहन राजे तद्धित हेतोः कृतिमपि न भजे ।
 यन्मे त्वत् सङ्गादन्यदकाम्यं तदपितदुक्तं कथये रम्यम् ॥१३१॥
 अयि वर सुन्दरि नागरि राधे ! कुरु हरिवचने हृदयमवाधे ।
 यन्मम मुखतः श्रवण पुटेन स्वदितं त्वां वगयेत रसेन ॥१३२॥
 पयस इव द्रव भावः सहजः प्रणय महोद्यस्तव मयि सुनिजः ।
 सुमुखि ! तदद्य किमेव मसारं मयि कुरुषे गुणदोषविचारम् ॥१३३॥
 तव रस पुष्टि कृते व्रजरामा मुरलिरवेण हृता अभिरामाः ।
 तत्र वृथा किमुद् घटय दोषं भवतु प्राणेश्वरि ! भज तोषम् ॥१३४॥

भाग्य फलीभूत हुआ, मेरा अशेष संशय आज मिट गया हे आर्ये ! हे सरले ! मैं हरि की सेवाके लिए जा रही थी, यहाँपर कैसे चिन्तामणि मिल गई ॥१२९॥ गोकुल युवति गण के दुर्लभ पादरज की कामना स्वयं लक्ष्मी भी करती है । अधिक क्या वलूँ ? वृन्दावन चन्द्रभी तुम्हारी दासी की सौभाग्य कला की अभिलाषी हैं ॥१३०॥ उस मोहनराज के प्रति किसी प्रकार अपेक्षा प्रीति, आकाङ्क्षा नहीं है, और उनके हितके लिये भी किसी प्रकार यत्न नहीं करती हूँ । कारण तुम्हारे सङ्ग से मेरी दूसरी किसी वस्तु की आकाङ्क्षा नहीं है, तथापि श्री हरिने जो कुछ कहा है, उस रमणीय कथा को कहती हूँ ॥१३१॥ अयि वराङ्गने नागरि राधे ! हृदय की पीड़ा नाशक हरि कथा में मनोनिवेश करो, कारण मेरे मुख से निःसृत कथा का आस्वादन श्रवण पुट से करने पर कथा तुम्हें रस मयी करेगी ॥१३२॥ जलका जिस प्रकार स्वाभाविक द्रवीभाव है, उस प्रकार मेरे प्रति तुम्हारे प्रणयातिशय भी अतिनित्य है । हे सुमुखि ! तब क्यों आज वृथा मेरा गुण दोष विचारने में लगीं हो ॥१३३॥ तुम्हारे रस पोषण के लिए ही अभिरमणीय व्रजरमणी गण का आह्वान मुरली ध्वनि से मैंने किया है । उस से क्यों तुम दोषोद्घाटन कर रही हो ? हे प्राणेश्वरि ! जो कुछ होने का है, वह तो हो चुका है, अब सन्तुष्ट हो

गोप किशोर्यं स्त्वद् भ्रम भुक्ताः काश्चन धृत् कृत्याथ त्यक्ताः ।
 श्रुत्वा काश्चिदनुत्तररूपा स्त्यक्ता अनुभूयाननुरूपाः ॥१३५॥
 अन्या दशपञ्चैकीभूय क्षितह्रियोमां रह आनीय ।
 पाणौ पीतपटे वा धृत्वा मत्ताः सकृदधरमधुपीत्वा ॥१३६॥
 एका कापि तवास्ते योग्या व्रज इति द्वितीजन वाग् भङ्ग्या ।
 काचन काचन भुक्त्वा त्यक्ता सास्प्रतमत्र वयं सुविरक्ताः १३७
 हरि हरि काममहाम्बुद्विपारं कावा नेष्यति मां सविकारम् ।
 स्थितवानेव महतिश मन्तं चिन्ताततिमिलनिजकान्तः ॥१३८॥
 स्वद्वनमध्यमुत्तमति विधुर त्वं मा बोधितवत्यसि मधुरम् ।
 स्वात्मानं श्रीराधानाम्नीं प्रकटित मच्चिन्तातिग धाम्नीम् ॥१३९॥
 स्वप्ने जागरणे वा प्रेषसि ; पूर्वमपि त्वं हृदि मे स्फुरसि ।
 वहिरिदमनुपलभ्य तव रूपं वंभ्रमामि कृतमिथ्यारोम् ॥१४०॥

जाओ ॥१३४॥ किसी किसी गोप रमणी को जो मैंने सम्भोग किया
 वह भ्रम से ही हुआ है, तुम्हीं हो ऐसी प्रतीति मेरी हुई थी । किसी
 को धृत्कार से त्याग किया है, किसी का रूप की कथा सुनकर भी
 उसको असदृश मान कर त्याग किया है ॥१३५॥ अपरापर दण
 पाच रमणी मिलकर निर्लज्ज होकर मेरा हात व पीतपट पकड़ कर
 एकान्त स्थान में मुझ को ले जाकर एक बार माल मेरी अधर मुखा
 पान कर वे सब उन्मत्ता हो गई हैं ॥१३६॥ हे नागर ! इस व्रजमें
 एक ही रमणी है, वह ही तुम्हारी योग्या है, दुती की उस बात से
 किसी किसी गोपी को सम्भोग करके ही छोड़ दिया है, अब मैं इस
 विषय में अतिशय विरक्त हो हांगया हूँ ॥१३७॥ हरि हरि ! विकार
 ग्रस्त मुझ को कौन व्यक्ति काम समुद्र का पार में ले चलेगा ? दिन-
 रात में इस चिन्ता से बिता रहा हूँ । तुम्हारे निज प्राण नाथ को
 मानस चिन्ता जाल ने फंसा लिया है ॥१३८॥ ततपश्चात् मैं विरह
 से व्यथित होकर तुम्हारे उपवन में सो गया, तब तुमने स्वप्न के छल
 से निज मधुर श्रीराधानाम को सुनाकर एवं मेरी चिन्तातीत रूप
 स्वरूप को देखाकर मुझ को तुमने जगाया ॥१३९॥ हे प्रेषसि ! स्वप्न

सहजादेव तु दिव्या मुरली स्वयमधि गायति नाम गुणालीः ।

तव परमाद्भुत मधुरिम भरिता दिन निशि न मया क्षणमपिरहिता ॥१४१॥

गायति मुरली मम किमपूर्वं सन्ततमिति विस्मितधीरम् ।

अहह पुरा करुणामयि ! संप्रति धन्यतमां स्तौम्यनिशममूर्प्रति । १४२

अनया सहज त्वद्गुण रसया प्यद्य कृता स्वयि काकुप्रचयाः ।

दुस्तर काम कदन दलनाय प्रेषसि ! कथमपि तव मिलनाय ॥१४३॥

त्वन्नामैक परा मम मुरली स्वय मायन्मुग्धा कुलटाली ।

तत्र न कुरु मयि दोषारोपं न नुरस रूप मपित्यज कोपम् ॥१४४॥

त्वत् सङ्गम रस निवसज्जीवः प्रणयिनि शङ्का रहितोऽजीव ।

दीन दयार्तः कुतुफित हृदयः खेलाभाहत गोपीनिचयः ॥१४५॥

व जागरण में पहले से ही तुम मेरी हृदयमें स्फुरित हो रही हो बाहर तुम्हारे रूप को न देखकर इतस्ततः मिथ्या विषय में अन्यनारी में तुम्हारे रूप को आरोप कर ही अबतक घुम रहा हूँ ॥१४०॥ मेरी मुरली सहज ही स्वयं तुम्हारे नाम गुणावली का गान उच्चैःस्वर से करती रहती है, वह तुम्हारी अद्भुत माधुरी पूर्ण होने के कारण दिवानिशि क्षण काल के लिए भी मैं उस को छोड़ नहीं सक्ता हूँ । ॥१४१॥ मेरी मुरली क्या अपूर्व गाती है ? यह सोचकर पहले मैं अचरच में पड़ गया था । अहो ! करुणामयी, अब मैं उस गानका तात्पर्य को समझ कर धन्यतमा मुरली का सर्वदा स्तव करता हूँ । ॥१४२॥ स्वाभाविक तुम्हारे गुण रसोन्मत्ता मुरली तुम्हारे लिए अनेक दैन्योक्ति वी है । हे प्रेयसि ! सुनो, उसका कारण मैं कहता हूँ । दुस्तर काम पीड़ा को नष्ट करके जिस किसी प्रकार से तुम्हारे साथ मेरा मिलन कराने के लिए ही मुरली निनादित होती है ॥१४३॥ मेरी मुरली तुम्हारे नाम लेकर निनादित होती है, किन्तु मुग्धा कुलटा रमणी गण स्वयं आजाती है । उस से तुम मेरे प्रति दोषारोप नहीं कर सकती हो । हे राधे तुम्हारा यह कोप मान रस निदान होने पर भी अब उसको छोड़ो ॥१४४॥ हे प्रणयिनि ! तुम्हारे सङ्गम की आशा से मैं जीवित प्राण निरतिशय निःशङ्क था । मैं दीन जनके

मुप्रसन्नवदनां न निरीक्षे त्वां यदि कृतमज्जीवन रक्षे ।
 की तु तदा मम कौतुक कामः कायादेरपि वृत्तिविरामः ॥१४६॥
 क्षान्ति स्नेह कृपामय प्रकृते निज भृत्ये मयि दीने प्रणते ॥
 कर्णजाप मपि कुर्वत्यालिनिकरे नेष्वाप्यागः पटली ॥१४७॥
 अथ हतभाग्यतमे मयि राधे ! नाशु प्रसीदस्यसदपराधे ।
 त्वत् पदकाङ्क्षितवृन्दाविपिने द्वापि दशास्यान्मम मृगनयने ॥१४८॥
 श्रुत्वा हं हरिवाक्यकदम्बानेप्यसि यदि चल तिष्ठ सुखं वा ।
 मम तु भवत्याः श्रीपदकमलादितरपदेधीस्तनुरपि न चला ॥१४९॥
 साश्रु सगदगदमिति निगदन्तं कान्तावेशधरं निजकान्तम् ।
 विस्मयमूकास्वालिषु राधा प्राह सरसमिदमनुरागान्धा ॥१५०॥
 श्यामलगोपकिशोरित्वयिमे कृष्ण इवात्मा प्रीतिं चकमे ।

प्रति दयार्त्त एवं कौतुहलाक्रान्त होकर तब समागत गोपी मण्डली
 के साथ ही मैंने क्रीड़ा की ॥१४५॥ मेरा जीवन की रक्षा के लिए
 यदि तुम को प्रसन्न नहीं देखता हूँ, तब मेरी यह कौतुक और काम
 अतितुच्छ होगा, अधिक मैं क्या कहूँ । तब मेरा देहादि की वृत्ति भी
 विरत होगी । अर्थात् जीवन चला जायेगा ॥१४६॥ हे क्षान्ति,
 स्नेह कृपामयि राधे ! तुम्हारा निज भृत्य, दीन, प्रणत दास के प्रति
 सखी समूह अनेक प्रकार निन्दावाद तुम्हारे निकट करने पर भी तुम
 उस में से दोष राशिका ग्रहण न करना ॥१४७॥ हे मृगनयने राधे !
 शेष कथा यह है कि—यदि हतभाग्यतम निरपराध मेरे प्रति शीघ्र
 प्रसन्न न हो तब तुम्हारे पदाङ्कित इस वृन्दाविपिन में मेरी मृत्यु हो
 जावेगी ॥१४८॥ श्रीहरि के यह बात सुनकर यदि जाने की इच्छा
 हो तो चलो नहीं तो यहाँपर आनन्द से रहो ! मेरा मन तो तुम्हारे
 चरणतल से विन्दुमात्र चञ्चल नहीं होता है ॥१४९॥ अश्रुभाराक्रान्त
 नयन से गदगदाय स्वर से कान्ता वेशधारी निज कान्त श्याम सुन्दर
 जब उस प्रकार कहने लगे थे तो सखीगण विस्मयान्वित होकर नीरव
 रही, तब अनुराग से अन्धी भूता श्रीराधा उनको प्रेम से इस प्रकार
 कही ॥१५०॥ हे श्यामल गोप किशोरी ! तुम्हें देखकर मेरा मन

ज्व स्थितवत्यसि कालमियन्तं पुण्यै स्तव नुष मैक्षि सुकान्तम् ॥१५१

प्राय स्तोत्रतरानुध्यातः कृष्ण स्त्वं मम सुसखीभूतः ।

इदमतिभद्रतरं यदशङ्कं साधुनिधास्ये प्रियतममङ्गम् ॥१५२॥

यदि मम कथमपि तादृश वेशः स्मृतिपथमेयास्त्रिजह्वयेशः ।

चह्येत्तं सा वादितवंशा सुखप्रियसि मां त्वं तद्वेशः ॥१५३

यदपि परार्द्धान् हरिरपराधानकृतं तथापि क्षमते राधा ।

यत्ते वदन चन्द्रसौन्दर्यं स्वमपि ममक्रोणावाश्चर्यम् ॥१५४

एह्येहि स्फुट नीलसरोरुहसुकुमाराङ्गि सखी नुपगूह ।

स्नेहोत्तरले मां हरिविवरप्रभवः शाम्यतु दत तनुदाहः ॥१५५

इत्युक्त्वासीद् वृषभानुसुता सपदिविवृद्ध प्रणयावशता ।

प्राण पतिं पुलकाञ्चितगात्रा परिरभ्यास्ते मुकुलितनेत्रा ॥१५६

अयं परिरभ्य हरिः परितुम्बन्मुखमरसयदपि चाधरविम्बम् ।

इयाम सुन्दर के समान प्रीतिमय आचरण करना चाहता है ॥ अभी तक तुम वहाँ रहों, अनेक दिनों के वाद पुन्य से ही आज दर्शन मिला ॥१५१॥ तैल धारावत् अविच्छिन्न प्रवाह से स्मरण कर कृष्णवर्ण मनोहर सखी रूप में मेरे पास आई हो, यह अति सुन्दर है, मैं निःशङ्क चित्त से प्रियतम को कोड़देश में स्थापन करूँगी ॥१५२॥ यदि इस प्रकार वेष भूषा से शोभित होकर मेरा हृदयेस्वर मेरी स्मृति में उदित होते हैं, तब तुम शिर में मयूर पुच्छ से निर्मित चूड़ा धारण कर वैसुरी बजाते हुये उस वेषसे ही मुझ को सुखी कर सकोगी ॥१५३॥ यद्यपि श्रीहरि असंख्य भी अपराधाचरण करे, तो भी श्रीराधा उसको क्षमा करेगी, तुम्हारे यह आश्चर्य वदन चन्द्र का सौन्दर्य ही मेरा यथा सर्वस्व को खरीद लिया है ॥१५४॥ हे सुजात नील कमलवत् सुकुमाराङ्गि ! आओ आओ इस सखी को आलिङ्गन करो, हे स्नेह चञ्चले मेरा हरिविरह जात देहताप को आलिङ्गन देकर शान्त करो यह कहकर वृषभानुनन्दिनी बढ़ती हुई प्रणय रस से अवश हो गई, एवं पुलकाञ्चित कलेवर से प्राण पति को आलिङ्गन कर नयन मूँद कर रही ॥१५५-६॥ तदनन्तर हरि भी उनको आलिङ्गन

कुचमुकुले नखराङ्कु रदायी कृष्णोऽभूत् पुनरिति कुस्मायी ॥१५७

ज्ञातं ज्ञातमहो रस भरितं धूर्त्तमणे ! तव सकलं चरितम् ।

इति सहसित राधेरित हृष्टः कुञ्जगृहान्तः सपदि प्रविष्टः ॥१५८

कलितयुवति वेशोमानिनीमेत्य राधाम् ।

हरिरनुनय काकु व्याकुलोक्ति प्रपञ्चैः ॥

सपदि सहजवृद्ध प्रीतिदत्ताङ्गसङ्गां

स जयति परिहृष्यन् गाढमालिङ्ग्य कान्ताम् ॥१५९

अथ सहजोज्ज्वल भावोज्जुम्भः प्रिययालम्बितभुजपरिरम्भः ।

प्रकट तनुः स श्याम किशोर स्तन्मिलित श्चलितो रतिचोरः ॥१६०

तौ रसमूर्त्ती राधाकृष्णौ श्रीवृन्दावन रास सतृष्णौ ।

अति शुशुभाते मोहनवेशौ प्रतिपदविरचित केलिविशेषौ ॥१६१

गौर श्यामल मोहन मूर्त्ती निरवधि वधि मदनरसपूर्त्ती ।

करके मुख चुम्बन करते करते अधर सुधा पान किए, कुच मुकुल में नखराधात करते करते पुनर्वार कृष्ण मूर्त्ति को प्रकट कर ईषत हास्य करने लगे ॥१५७॥ हे धूर्त्त शिरोमणि ! अहो तुम्हारे रस भरित सव चरित्र ही जान गई, श्रीराधाकी इस हास्योक्ति से हृष्टचित्त श्रीकृष्ण सहसा ही कुञ्ज गृह में घुस गए ॥१५८॥ श्रीहरि युवति वेप धारण कर मानिनी श्रीराधा के निकट आ गए थे, बहुविध अनुनय विनय काकूक्ति द्वारा कान्तामणि श्रीराधा का सहज विवर्द्धिष्णु प्रीति भरित अङ्ग सङ्ग को प्राप्त कर उनको निविड़ आलिङ्गन पूर्वक परितुष्ट होकर जय युक्त हो रहे हैं ॥१५९॥ सहज उज्ज्वल भावमय वह रति लम्पट श्याम किशोर प्रिया का भुज परिरम्भण प्राप्तकर युवति वेश को छोड़ कर निज देह को प्रकट कर दोनों मिलकर रास मण्डल के और चलदिये ॥१६०॥ श्रीवृन्दावन में रास रस के लिए तृष्णाशील वह रस मूर्त्ति राधा कृष्ण मोहन वेश से अतिशय शोभा का विस्तार करने लगे, वे दोनों प्रतिक्षण में ही विशेष विशेष केलि विलास करने में प्रवृत्त हो गये ॥१६१॥ वह गौर श्याम मोहन मूर्त्ति युगल निरन्तर

निरूपम नवतारुण्य प्रवेशौ रास विलासोचित वरवेशौ ॥१६२॥
 वेणी चूड़ा रचित सुकेशौ मिथ उद्भवदति मदनावेशौ ।
 अरुण पीतपटवर परिधानौ दिशि दिशिविसरद् दीप्तिवित्तानौ ॥१६३॥
 रति रतिनायक कोटिविलासौ मधुर विलोकपरस्परहासौ ।
 मिथ आश्लेषित निजतनुवेशौ पुलक मुकुल कुलसततोन्मेषौ ॥१६४॥
 मिथ ऊरुविधकृत नर्मालापौ नव नव निर्मित केलिकलापौ ।
 विविध भङ्गिगति विजित मरालौ नूपुर रसना क्वणित रसालौ ॥१६५॥
 रुचिरान्दोलन सुभुज मृणालौ गल दोलः यशानवरमालौ ।
 मिथ उत्पुलक भुजा कलितांसौ सव्यतदन्व भुजाम्बूजवंशौ ॥१६६॥
 मिथ ईक्षित मुखचन्द्र सहासौ श्रुति पूरण निरतेरितवंशौ ।

वद्विष्णु मदन रस पूरित होकर अनुपम नव तारुण्यका उन्मेष से रास विलासोचित अत्युत्तम वेश से सज्जित हो गए ॥१६२॥ वे दोनों सुन्दर केशोंसे वेणी एवं चूड़ा की रचना की है, परस्पर के मदनावेश क्रमशः उदित होने लगा, दोनों के परिधान में अरुण वसन एवं पीत वर्ण के अत्युत्तम वसन दिक् दिक् में दीप्तिराशि का विस्तार कर रहे हैं ॥१६३॥ दोनों कोटि कोटि रति एवं काम देवके विलास रस की प्रकाश कर रहे हैं । परस्पर के प्रति मधुर निरीक्षण से परस्पर मधुर हँस रहे हैं । निज तनु को परस्परके द्वारा आलिङ्गित करके रखे हैं । सदा ही उनदोनों के अङ्ग में पुलकावलि रूप अङ्कुर का उन्मेष दिखाई देता है ॥१६४॥ परस्पर बहुविध नर्म परिहास रस रहस्यमय आलाप कर रहे हैं, नित्य नव नवायमान केलिविलासादि का उद्भावन करते रहते हैं, विविध गतिभङ्गी को अङ्गीकार कर मराल को भी पराजित कर रह हैं, एवं चरण में नूपुर एवं कटि में रसना रसाल ध्वनि कर रही हैं ॥१६५॥ दोनों के भुजमृणाल मधुर मधुर आन्दोलित हो रहे हैं, गलदेश में अत्युत्कृष्ट मालाझूँका ले रही है, वे दोनों पुलकाश्रित बाहु से परस्पर के स्कन्ध देश को अवलम्बन करके हैं, श्रीराधा के वाम हस्त में पद्म एवं श्याम के दक्षिण हस्त में में वंशी शोभित है ॥१६६॥ परस्पर के मुख को देखकर परस्पर हँसते

द्रुत काञ्चन मरकत रुचिचोरी सर्वादभूततम दिव्य किशोरौ ॥१६७॥
नित्यमधुर वृन्दावन केलौ शुद्धमहारस पूर्ण गुणालौ ।

कलित मुरज घरताल सुवीर्ण नृत्यगीत वरवाद्य प्रवीणैः ।

राधाकृष्ण रसैक प्रथमैः सहितो सुरसोल्लसितालिनैः ॥१६८॥

मणिमय पेटिकान्तरूपनिहितं रास विलासोपकरणजातम् ।

आवायाति हर्षभरभरिता स्तत् सेवक परा अनुयाताः ॥१६९॥

शुद्धोज्ज्वल प्रेमरसैक शक्ति

तद्वत् स्वरूपौ सुखसार राशी ।

तौ नः किशोरौ अतिगौरनीलौ

खेलायतां चित्रमनोजलीलौ ॥१७०॥

गत्वा तावथ वृन्दारण्यं, स्वगति पुरस्तादुत्सवशून्यम् ।

परिचरणोल्लसित ब्रजयुवती मध्येरेजतुरदमुलदोप्ती ॥१७१॥

रहते हैं, श्रीश्याम वसूरी वजाते हैं, श्रीराधा उस को सुनकर श्रवण को तृप्त कर रही है, एकने तो गलित सुवर्ण वर्ण के उपर विजय लाभ किया है तो दूसरेने मरकत कान्ति को ही चोरी कर लिया है । यह दिव्य किशोर द्वय सर्वथा ही अद्भुत है ॥१६७॥ शुद्ध महारस शृङ्गार पूर्ण गुणावलि भूषित यह युगल नित्य ही मधुर वृन्दावन में मधुर केलि करते रहते हैं, मृदङ्ग, करताल, एवं सुन्दरवीणा यन्त्र लेकर नृत्य, गीत, वाद्य में कुशल राधा कृष्ण के रस का एक मात्र विस्तारकारी सुरस से उल्लसित सखीगण को साथ लेकर दोनों ने यात्रा की एवं निरतिशय आनन्द पूर्ण युगल किशोर की सेवा निष्ठ दासीगण मणिमय पेटिकाके अभ्यन्तर में रासलीला के उपयोगी द्रव्य समूह को लेकर पीछे पीछे चलने लगीं ॥१६८-१६९॥ विशुद्ध उज्ज्वल रस की शक्ति राधा, एवं शक्तिमान् श्रीकृष्ण युगल रूप के देह गठन किए हैं, अतएव उसका ही सुख विनिर्यास राशि को दोनों जन भोग कर रहे हैं । हमारे अतिगौर नीलात्मक किशोर द्वय विचित्र कामलीला परायण होकर खेल रहे हैं ॥१७०॥ तदनन्तर उत्सव शून्य वृन्दावन

काश्चन चक्रुः पदसंवाहं काश्चन भेजुः सुरतोत्साहम् ।

काश्चनगन्धर्व्यलिपन्नपराः कण्ठे निदधुर्मलारुचिराः ॥१७२॥

चकुरथैका भृकुटिविलासं विदधुः काश्चन रतिपरिहासम् ।

काश्चन मृदुमृदु विदधुर्व्यजनं का अपि चक्रुर्भूषारचनम् ॥१७३॥

नागवल्लिदलनुज्ज्वल चन्द्रं दत्तवती काप्यधिमुखचन्द्रम् ।

नवनवकामकलाविर्भावं व्यञ्जितवत्यः काश्चन भावम् ।

मृदुमृदुवीणाद्यतिनिरवद्यं वादितवत्यः काश्चन वाद्यम् ।

काश्च संजगू रसानुरागा, मधुरमुदञ्चितपञ्चमरागाः ॥१७४॥

बहुविध हस्तक गतिलीलाभिः काश्चनवलितानृत्यकलाभिः ।

प्रिययोरुपरि सुपुष्पच्छत्रं काश्चन जगृहुः परमविचित्रम् ॥१७५॥

वरनागरिका वरनागरयो रुन्मद मदन रस प्रहसितयोः ।

प्राप्य तयोः करपद्मात् प्रमदाः कमपि प्रसादं व्यलसन् प्रमुदाः ॥१७६॥

में उपस्थित हो गए, परिचर्या रस में मग्न व्रज युवती गण के मध्य में

दोनों अद्भुत कान्ति को विस्तार कर विराजमान हो गए ॥१७१॥

कोई तो पाद सम्बाहन करने लगी, कोई सुरत मञ्जल करने लगी,

किसी ने विविध गन्धद्रव्य द्वारा अङ्ग लेपन किया, अन्यान्य गोपीगण

दोनों के कण्ठ में मनोहर माल्य प्रदान किये, ॥१७२॥ किसी ने

कटाक्ष पात किया, किसीने रति रस से परिहास किया किसी ने मृदु

मृदु व्यजन किया, अपर गोपियों ने भूषण की रचना की ॥१७३॥

किसी गोपीने दोनों के मुखचन्द्र में ताम्बूल एवं उज्ज्वल कर्पूर प्रदान

किया, अन्यान्य गोपीगण नव नवायमान काम कला का आविर्भाव

सूचक भाव की व्यञ्जना की ॥१७४॥ किसी ने वीणा वादन किया

किसीने रसानुराग से पञ्चमराग का आलाप मधुर स्वर से किया

॥१७५॥ किसी ने बहुविध हस्तक गतिलीलादि नृत्य कला का

प्रदर्शन किया, किसीने प्रियतम युगल के उपर परमविचित्र सुन्दर

पुष्पच्छत्र धारण किया ॥१७६॥ अत्युत्तम नागरी एवं अत्युत्तम

नागर उन्मद मदन रस से हास्य करते हैं, उनके हस्त कमल से प्रसाद

प्राप्तकर प्रमदागण प्रचुरतर आनन्दित होकर विराजित हैं ॥१७७॥

छित्वा छित्वा वीटक भेदान् ललितलवङ्ग कमुकच्छेदान् ।
 रसिक मिथुन मुषयोजितवन्धः काश्चन काश्च पतद्ग्रहवत्यः ॥१७८॥
 कर्पूरादि सुवासित शीतं भृङ्गारेणसलीलमुपनीतम् ।
 कृत्वाप्रियमिथुनेन निपीतं स्वं विदधुः काश्चन सुप्रीतम् ॥१७९॥
 आपुः काश्चन कण्ठगमालाः स्वाभरणानि च का अपि बालाः ।
 वरताम्बूल सुवीटकमन्याश्च वितमेव तु काश्चन धन्याः ॥१८०॥
 एकाः स्निग्धालिङ्गनमापुः करधृत्यैव काश्च पर्यापुः ।
 काश्चन कर्ण कथाभिर्भुङ्क्ताः काश्चित् वचनश्लाघनमहिताः ॥१८१॥
 अथ सुरतोत्सुकराणावृन्दं दुर्धरकामातिभिरत्यन्धम् ।
 दृष्ट्वात्युत्कट भावविकारं राधानिजपतिमवददुदारम् ॥१८२॥
 अवलाः प्रियविषमस्मरबाधास्तां तु न दित्सेत् वृद्धिमपि राधा ।
 तच्छृणु कथमास्येकमुपायं रमयसि येन युवतिसमुदायम् ॥१८३॥
 कान्तकदाचिन्मम सङ्कल्पः सममूढकृतविचारोऽनल्पः ।
 बहुरूपं त्वां रमयितुमर्हमि बहूभिरुपैर्बहुविधरतिभिः ॥१८४॥

किसीने उपादेय लवङ्ग, गुवाक् खण्ड युक्त बहुविध ताम्बूल वीटिका
 का आस्वादन कराया, अपर किसी ने पिकदानी हात में लेकर खड़ी
 होगई ॥१७८॥ किसी ने भृङ्गार को भर कर शीतल जल ले आया
 एवं प्रियतम युगल को जलपान कराकर आपने को खुशी किया ॥१७९॥
 किसी व्रजवालाने कण्ठस्थित प्रसादी माला किसीने सुन्दर आभूषण
 प्राप्त किया, किसीने रनेहालिङ्गन प्राप्त किया, किसीने करधारण से
 आनन्दलाभ किया, किसी गोपी कर्ण कथा सुनकर खुसी हुई तो कोई
 गोपी प्रशंसा सुनकर आनन्दिता होगई ॥१८०॥ अनन्तर दुर्धर्ष काम
 पीड़ासे महान्ध सुरतोत्सुका रमणी वृन्द को उत्कट भाव विकारशील
 देखकर श्रीराधाने निज नायक श्रीश्यामसुन्दर को सरलभाव से बोली
 ॥१८१॥ हे प्रियतम ! ये अवलागण विषय काम पीड़ा से व्यथित
 होरहीं हैं, राधा उन सबको विन्दुमात्र भी काम पीड़ा देना नहीं
 चाहती है, अतएव एक उपाय बोलती है, सुनो ! इस से तुम युगपत्
 सब युवतीयोंके साथ रमण कर सकोगे ॥१८२॥ हे प्राणकान्त किसी

अत्युत्कृष्ठाभरभावनतस्त्वन्मद्रूप रतोमोदयतः ।

केलय ऊरुवैदग्ध्या विहिता मनस पूर्तिः काप्यत उदिता ॥१८५॥

प्रियसखि ! किं तु करोषीत्युक्त्वा गात्रे सम कराघातं कृत्वा ।

सख्या भग्नसमाधिर्नयने, उन्मील्याहसमखिलाकलने ॥१८६॥

सम्प्रत्यपि च मुहूर्त्तं ध्यात्वा, कुर्वे यदु रूपं रसयित्वा ।

रूपं स्तैरभिरूपेर्नागर, गोकुल युवति गणैस्त्वं विहर ॥१८७॥

शैशव इष्ट योगमायादान् सम संकल्पसिद्धि मतिरतदा ।

त्वमनन्यानुरागपतिरभवस्तद्वदस्तु सुखसीमानुभवः ॥१८८॥

अथचित्रेक्षण कुतुकिनि रमणे, समयवति चाथ रहस्यातिगणे ।

किञ्चित् स्मितरुचि मोहन वदनं दधोराधामुकुलित नयनम् ॥१८९॥

समय विना विचार से ही मेरा एक संकल्प हृदय में जग उठा था, कि—वहु विधरूप प्रकटन कारी तुम्हें बहुविध रति श्री नायिका के साथ अनेक प्रकार से रमण कराऊँगी ॥१८४॥ अति उत्कृष्ठा से तुम्हारे और मेरे रूप राशि को प्रकट कर बहुल वैदग्धीके साथ केलि विलासादिका समाधान मैंने किया है, एवं इससे ही मेरा यह अनिर्वाच्य मनोवाञ्छा पूर्ति का उदय हुआ है ॥१८५॥ उस समय मुझे समाधि भग्न देख कर “ हे प्रियसखि ! क्या कर रही हो ” ? ऐसा कहकर किसी सखी मेरा अङ्ग में कराघात करने से मेरी समाधि टूट गई थी, अनन्तर निखिल प्रस्ताव का समाधान को देखकर मैं नयन उन्मीलन कर हँस गई थी ॥१८६॥ अभी भी मैं मुहूर्त्त काल ध्यान कर रस मय बहु रूप का प्रकटन कर रही हूँ । हे नागर ! तुम भी (समाधि में दृष्ट) उस प्रकार अनेक मनो मोहन रूप को प्रकाश कर गोकुल युवतियों के साथ विहार करो ॥१८७॥ शिशु काल में अतिरसमयी इष्टदेवता योगमाया ने मुझे संकल्प सिद्धि का वर प्रदान किया है, तुम अनन्यानुरागमय पति (नागर) को प्राप्त करो एवं उस प्रकार से ही तुम्हारी सुखैक शेष की उपलब्धि भी हो ॥१८८॥ तत् पश्चात् राधा रमण विचित्र (रासरस) दर्शन के लिए कौतुकी होने पर एवं एकान्त में सखीगुण भी हँसते रहने के कारण राधा ईषत् मृदु मधुर

प्रकटाः प्रियतममूर्त्ती मंधुरा दृष्टा लोमादतिकामधुरा ।
 कृत्वा स्वमपि च सा तावन्तं व्यसृजच्चुम्बितपरिरब्धं तन् ॥१६०॥
 अथ कलितप्रियपाणि सरोजा राधातीवविवृद्धमनोजा ।
 मञ्जुलकुञ्जविलोकनकपटाद् गहनवनं सहसैवप्रविष्टा ॥१६१॥
 स बहुरूपहरिररमत ताभिः प्रथमोज्ज्वलरसरभस युताभिः ।
 रसिकशिरोमणिरतिरसिकाभि मंधुरिमराशिरधिकमधुराभिः ॥१६२॥
 प्रथमसमागमह्रीभयवलिता दूरात्तूष्णीमास्थित विनताः ।
 काश्चननिन्ये शयनमुदारः सानुनयंकृतवाहुप्रसारः ॥१६३॥
 किमपि करोमि न ते भजशयनं स्वजने किमिदमहोसङ्कुचनम् ।
 पायय किमपि वचोऽमृतमतुलं, स्वीकुरुगन्धमाल्यताम्बूलम् ॥१६४॥

हास्य शोभित मोहन वदन से नेत्र को मूँद कर ध्यान करने लगी ॥ ८६॥ तब आपने प्रियतम की अनेक मधुर मूर्ति राजिका प्रकटन को देखकर लोभ से अति कामोन्मत्ता होकर अपने को भी उतनी मूर्तियों में प्रकाश किया एवं उस उस स्वरूपको प्रियतम द्वारा चुम्बित एवं आलिङ्गित कराया ॥१६०॥ अनन्तर प्रियतम के कर कमल को पकड़ कर श्रीराधा निरतिशय कामावेग से मञ्जुल कुञ्ज दर्शन के छल से सहसा गहन वन में घूस गई ॥१६१॥ तब वह बहु रूपी हरि उस आदि उज्ज्वल रस रभसयुक्त राधा के काय व्यूह राधा गोपीयों के साथ रमण करने में प्रवृत्त हो गए ! तब रसिक शिरोमणि के साथ रति रसिका गण का मिलन हुआ, मधुरिमराशि के साथ अधिकतर माधुरी धारिणी का सङ्ग हुआ ॥१६२॥ किसी किसी रमणी गोपी प्रथम समागममें लज्जा एवं भयके कारण दूरमें निर्वाक् एवं निष्पन्द होकर अवनत मस्तक होकर रही, यह देखकर मोहन कृष्ण वाहु प्रसारण द्वारा अनुनय कर उन सबको सेजपर ले गए ॥१६३॥ तुम्हारे कुछ नहीं करेंगे, तुम सेजपर सो जाओ, अहो ! निज जनके पास ऐसा सङ्कोच क्यों करती हो, एकवार वाक्यामृत पान कराओ, यह अनुपम गन्ध माल्य, ताम्बूलादि ग्रहण करो ॥१६४॥ इस प्रकार किसी धन्या गोप किशोरी को अनुनय किए, अनन्तर उस की मृदु मधुर हास्यमय

कामपि धन्यामित्यनुनीय, स्मितरुचिरुचिरां सहसानीय ।
 शयनं नेति सगदगदवचनामलमादिलव्याचुम्बत् प्रमनाः ॥१६५॥
 निद्राव्याज विमुद्रित नयनं वदनं चुम्बितमन्याः शयनम् ।
 प्राप्ताः स्वस्य हसन्नुरु पुलकः पर्यरभत नव नागर तिलकः ॥१६६॥
 नेति वचन रचना अपि चान्याः कर कमले धृतवानतिधन्याः
 आनीयाङ्कः मसौ कुसुमाली मरचयदलकचये वनमाली ॥१६७॥
 काञ्चन हारलतापण कपटानुमदकरमुदितस्तनसुघटा ।
 सुखमपिदुःखमिवाभिनयन्ती वीक्ष्य हरिः स जहासलसन्तीः ॥१६८॥
 कुचमुकुलादौकृतनखलिखनः पीताधरदलकृतरदलनः
 तासामुत्तम्भित पुरुषदन स हरिरखेलच्चुम्बितवदनः ॥१६९॥
 सहसा नीविवन्धनमिलितं सम्भ्रमयुतयुवतीकरविधृतम् ।
 अतिदुर्धरमदनात्युत्तरत्नं तदतिविरेजे हरिकरकमलम् ॥२००॥

रमणीय भूति को देखकर उसको सहसा सेज पर ले गए, वह गदगद
 स्वर से ' ना ना ' कहकर असम्मति प्रकट करने पर भी श्याम ने
 आनन्दित होकर उस को आलिङ्गन चुम्बन प्रदान कर कृतार्थ किया
 ॥१६५॥ अन्यान्य गोप बालागण श्याम के शय्या के पास आकर
 श्याम को निद्राछल से मुद्रित नयन देखकर चुम्बन करने लगी, नव
 नागर तिलकने उसी समय हँस हँस कर पुलकायित होकर उन सब
 को परि रम्भण किया ॥१६६॥ अपरापर व्रजाङ्गना गण 'ना' कह
 कर निषेध करने पर भी वनमाली उन सब को गोदीमें बैठा लिए एवं
 उनसब के कुञ्चित केशदाम को पुष्प हार से सज्जित किए । १६७॥
 किसी किसी गोपी की हारलतादान करने के छल ले उन्मत्त हस्त से
 श्यामने उनके स्तन कमल द्वयका मर्दन किया । स्व सुख में भी वे
 सब दुःखवत् अभिनय करने लगी, यह देखकर श्रीहरि ने हँसा ॥१६८॥
 उनके कुचमुकुलों में नखराघात एवं अधर रस पान पूर्वक अधर में
 दन्ताघात करके महाकाम को प्रवृद्ध कर चुम्बित वदन श्रीहरि खेलने
 लगे ॥१६९॥ अति दुर्धर्ष मदना वेश से परम चञ्चल श्रीहरि के कर
 कमल सहसा नारियोंके नीवीवन्धन खोलने में प्रवृत्त होने पर सम्भ्रम

रेमे मधुपति रथलंलनाभि बंधुविधसुरतबन्धरचनाभिः ।
 रतिरसरभसोल्लसिततदूरुः स्पर्शन बहु परिपाटी चारुः ॥२०१॥
 उच्छृङ्खलं रतिखेला श्रान्तः प्रोन्मदरति रभसोद्यतकान्तः ।
 तन्मुख वीक्षण कृत परिहासः स्मेरमुखोऽमोदत सविलासः ॥२०२॥
 इत्थं विहरति राधा रमणे, बलदभिमाने युवति विताने ।
 तानि पिधाय स्वकरूपाणि, क्वापि विजह्ये राधाजानिः ॥२०३॥

आनीय गोपतरुणीर्मु रलीरवेण

राधामपि प्रचुर काकुभिरागमय्य ।

तासां स्वक्लप्त रतिसन्ततिजाभिमानं

शान्त्यै कृपानिधिरथ प्रिययैक आसीत् ॥२०४॥

कृष्णमदृष्ट्वा गोप्योऽनवधौ, सपदि निमग्नाः शोक पयोधौः

हानाथेति व्याकुल वचना इचेरुः परितो विह्वल करणाः ॥२०५॥

युक्त गोपीगण ने ततक्षणात् उसको पकड़ लिया ॥२००॥ तब अनेक विध रति बन्ध रचना कर गोपललनागण के साथ मधुपति रमण करने लगे । रति रस प्राचुर्य से उल्लसित होकर उन के उरुदेश उस समय गोपीगण के स्पर्श से बहु परिपाटि के साथ सुचारुता को प्रकट किए ॥२०१॥ अमर्याद रति खेल से परि श्रान्त एवं प्रोन्मद मदना वेश में निरत होकर भी रमणीय हरि उन सब के मुख की देखकर परिहास करने लगे । उन के मुख में मृदु मधुर हास्य था, प्रमदा गण के साथ विलास कर आपने आमोद प्राप्त किया ॥२०२॥ श्रीराधा रमण, इस प्रकार विहार रत होनेपर युवति गण के चित्त में महा अभिमान । उदित हुआ, यह देखकर राधानायक, निज प्रकाश मूर्ति समूह को अन्तर्हित करके अन्यत्र कहींपर विराजित हो गए ॥२०३॥ मुरलीरवसे गोपवालागण को बूलाके लाकर, एवं प्रचुरतर अनुनय से श्रीराधाको लाकर गोपीगणके रति राशिजात अभिमानको प्रशमित करने के लिए कृपानिधि कृष्णचन्द्र तब प्रियतमा राधा के साथ अन्यत्र विचरण करने लगे ॥२०४॥ श्रीकृष्ण के अन्तर्धान से गोपी

चिन्मयमन्तरुदितहरिरूपं मूर्त्तमिवाच्युतमुरतस्वरूपम् ।
 वृन्दाविपिनलतातरुवृन्दं ताः पप्रच्छुनिजमुखकन्दन् ॥२०६॥
 भो अश्वत्थप्लवङ्ग वः किं दृष्टो हरि रानतभावः । ?
 सहि न श्वोरित हृदयो यातः प्रेमहसिता इक्कार संघातः ॥२०७॥
 भो भो इचम्पक केशरनाग, प्रियकागोकवकुलपुत्राग !
 जम्बुकुरुवकपनसरसालक्रमुक कुटज वकतालतमाल ॥२०८॥
 अहह महान्तो यूयं सदया, वयमपि विरह व्याकुलहृदयाः ।
 कथयत मानवतीहृतमानस्मितवदनस्य हरेः पदवीं नः ॥२०९॥
 अयि सखि माधवि मालति मल्लि जातिपूथि नीलिनि शेफालि ।
 भा गोपयत गोपकुलतिलकं, कृतकर संस्पर्शं किं वरसिक्कन् ॥२१०॥
 अयि कल्याणि तुलसि हरिचरणा, मृदुगदयितं त्वं कुरु वः कुरुणाव
 वयास्ते वद नो जीवित बन्धुः सकल कल्यानिधिरतिरससिन्धुः ॥२११॥
 गण तत्क्षणान् अशीम शोक सागर में निमग्न हो गईं । ' हा नाथ '
 ' हा नाथ ' कहकर व्याकुल भावसे विलविलाकर हरिको इधर उधर
 दुँदुने में लग गई ॥२०५॥ उनके हृदय में चिन्मय हरिरूप उदित
 हुआ, उन्होंने मूर्त्त मुरत की भाँति श्री हरि की मूर्त्ति को प्रत्यक्ष किया
 एवं वृन्दाविपिन के लतातरुवृन्द के निबट उनकी वथा पुछने लगीं,
 ॥२०६॥ हे अश्वत्थ, प्लक्ष ! ' पाणड़ी ' एवं वटवृक्ष वृक्षगण ! तुम सबने
 क्या विनम्र मूर्त्ति श्रीहरि का दर्शन किया है ? प्रेममय हँसी से तथा
 नयन वाण के आघात से उन्होंने हमारे हृदयको चोरी कर भग गया
 है ॥२०७॥ हे चम्पक, केशर, नाग, प्रियक ' कदम्ब ' अशोक, वकुल
 पुत्राग, जम्बुन, कुरुवक, पनस (कटहर) रसाल, क्रमुक (सुपाड़ी)
 कुटज, वक, ताल, तमाल, वृक्षगण ! तुम सब सहृदय व महान्त हो,
 हम सब विरह में व्याकुल हैं, कहो ? मानवतीयों के मान को चोरी
 कर सुन्दर हास्य शोभित वदन हरि कहाँ चले गये ॥२०८॥ २०९॥
 अयि सखिः ! माधवि, मालति, मल्लि, जाति, यूथि, नीलिनि (नील
 पुष्पिका) शेफालि ! तुम सब ने उनके कर स्पर्श प्राप्त किए हो, इस
 लिए गोपकुल तिलक रसिक श्याम सुन्दर को गोपन न करो ॥२१०॥

अथ काश्चन हरि लीला ललिता, अनुकृत वत्यो मिथ्यावललिताः ।
अत्यावेशाद् विस्मित देहाः काश्चन भेजु मधुरतदीहाः ॥२१२॥

द्रुमलतिकाः पुनरपि पृच्छन्त्यः, कुञ्जं कुञ्जं मुहुरभियान्त्यः ।
ददृशुः क्वचपद पङ्क्तिं ललितां ध्वजवज्राङ्कुश पद्मादियुताम् २१३

ज्ञात्वा हरि पदचिह्नं रामा मृगयन्त्यस्तं रत्यभिरामाः ।
अन्य अपि पदलक्ष्मीश्रेणी ददृशुरिवाद् भुतमधुरिममवेणीः ॥२१४॥

श्रीराधाया इति निर्धारं कृत्वा बहुविध विहित विचारम् ।
रुचुस्तत्पदपङ्कजयुगले दलदतिभावारसभर वहले ॥२१५॥

अन्तर्हिते दयितया सह कृष्णचन्द्रे
गोप्योमहानिविडशोकतमोभिरन्धाः ॥

पृष्ठा मुहुर्द्रुमलता अनुकृत्य लीलां

दृष्ट्वा पदानि तु तयोः समवर्णयं स्ताः ॥२१६॥

अयि कल्याणि तुलसि ! हे हरि चरण कमल प्रिये ! तुम हमारे प्रति
करुणा करो, सकण कलानिधि रतिरस सिन्धु हमारे जीवित बन्धु
कहाँ है कहो तो !! २११॥ अनन्तर कोई कोई गोपी परस्पर मिलित
होकर हरि की मनोज्ञ लीला कदम्ब का अनुकरण करने लगी, वे सब
महा आवेश से देह विस्मृत हो गई, कोई कोई तो उनकी मधुरलीला
वलि भजन गाने लगी ॥२१२॥ पुनर्वार वृक्ष लताओं से कृष्णवार्त्ता
को पुछ पुछ कर मुहुर्मुहु कुञ्ज कुञ्ज में ढूँढ़ते ढूँढ़ते एकस्थान में
ध्वज वज्र अङ्कुश, पद्मादि युक्त परम सुन्दर श्रीकृष्ण पदाङ्क पङ्क्ति
को उन्होंने देखा ॥२१३॥ रमणीगण हरिपद चिह्न का पश्चिचय प्राप्त
कर, उक्त पदचिह्न समूह को देख देखकर हरि को अन्वेषण करते
करते आश्चर्य माधुरी धारावद् अति सुन्दर अन्यान्य पदचिह्न श्रेणी
को भी देखीं ॥२१४॥ द्वितीय पदचिह्न समूह श्रीराधा के ही हैं, इस
प्रकार विचार पूर्वक निष्पत्ति कर रसातिशय बहुल उक्त पादपद्म
युगल के प्रति अनुराग से कहने लगी ॥२१५॥ कृष्णचन्द्र दयिता
राधा के सहित अन्तर्हित होनेपर गोपीगण महाधन शोकान्धकार से

कृष्ण पदाङ्कं पश्यत कामं राधापदलक्ष्म्याप्यभिरामं ।
 सख्या इदं खलु दर्शित मनया दीनतमास्त्रतिनिर्भरकृपया ॥२१७॥
 प्रेष्ठतमांसापितुजवलिः परमोज्ज्वलरसकल्पकवलिः ।
 राधाध्रुवमिह लीलागतिभिश्चलितामृदुमृदु नूपुररुतिभिः ॥२१८॥
 गन्तुमशक्तामथ तु कान्तां स्कन्धे कृत्वा चपल दृगन्ताम् ।
 उदवहदति पुलकित सर्वाङ्गः प्रोज्जृम्भित रतिरङ्गतरङ्गः ॥२१९॥
 स्कन्धादवरोप्यात्र तु कान्तां प्रायित पुष्पां चलदलकान्तां
 प्रेयस्यर्थे हरिरुल्लसितः कुसुमान्यवचितवानथ परितः ॥२२०॥
 उपविश्याथ स उत्पुलकोरु द्वयमध्यगदयितामतिचारुः
 गुम्फितवान् कुसुमं वरवेणी इचक्रे चाग्याभरणश्रेणीः ॥२२१॥
 सख्यः पश्यत मञ्जुलकुञ्जे ध्रुवमिह गुञ्जन्मधुकर पुञ्जे ।
 प्राविशतां तौ सुरत सतृष्णौ मदकलमूर्त्तौ राधाकृष्णौ ॥२२२॥

अन्धीकृत होकर मुहुर्मुहु वृक्षलताओं को पुछ पुछ कर, एवं लीलानु
 करण कर युगलके पदचिह्न राजि को देखकर इस प्रकार वर्णन करने
 लगीं ॥२१६॥ हे सखीगण ! श्रीराधा के पदचिह्न शोभा रहित श्री
 कृष्ण के नयनाभिराम पदाङ्क समूह को दर्शन करो । दीन तमा
 हमारे प्रति अति निर्भर (प्रगाढ़) कृपा द्वारा यह ही संसूचित हो रहा
 है ॥२१७॥ प्रेष्ठतम श्याम के स्कन्ध देश में भुजलता को स्थापन कर
 परमोज्ज्वल रस कल्पलता राधा निश्चय ही यहाँपर लीलागति को
 अङ्गीकार कर मृदु मधुर नूपुर ध्वनि के साथ चले हैं ॥२१८॥ यहाँपर
 चञ्चल कटाक्ष शालिनी कान्तामणि राधा चलने में अक्षम होने पर
 रतिरस तरङ्ग व्याप्त पुलकाचित अङ्ग श्याम सुन्दर राधा के अपने
 कंधे से वहन किये हैं ॥२१९॥ यहाँपर चञ्चलालक शोभिता श्रीराधा
 पुष्प चाहने से उनको कंधे से उतार कर उल्लसित हरि प्रेयसी के
 लिए इतस्ततः कुसुम राशि चयन किये थे ॥२२०॥ पश्चात् परम
 रमणीय श्याम बैठगये, उच्च पुलका वलि शोभित ऊरुद्वय के मध्य में
 दयिता राधा को बैठाकर कुसुम माल्यसे अत्युत्तम वेणी एवं अन्यान्य
 बहुविध-अलङ्कार प्रस्तुत कर दिये हैं ॥२२१॥ हे सखीगण ! देखो

पश्यत पश्यत किशलयशयतं सफलीकुस्ताद्यैव च नयनम् ।
 सुरतदिमर्दाद्बिलुलितमीक्ष्यं त्रुटित कुसुमं कञ्चुकशिखिपक्षाम् ॥२२३॥
 इत्थं परममहारसधाम्नो बहुविध पदकैर्बहुमधुरिम्नोः ।
 ताः समलङ्कृत सुस्थल जातं वीक्ष्यवीक्ष्य सुखमापुरमातम् ॥२२४॥
 श्रीराधापि स्वपदैक रसा बध्वा ता अतिकरुणा विवशा ।
 रुष्टेवाह प्रियमति कृपणं त्वं चल नहि में शक्यं चलनम् ॥२२५॥
 भीत भीत इव मृदुमृदु वदति स्कन्धं मम चिरमारोहेति ।
 आक्षिपदेव रचित बहुलीलं सा निज पति मपि सत्वरशीलम् ॥२२६॥
 स चतुर चूड़ा मणिरालक्ष्य प्रेयस्या हृदगतमविलक्ष्यः ।
 तत् क्षणमभवत् सातु तदेव प्राप्तवती खलु मूर्च्छितामेव ॥२२७॥
 हरि रपि प्रकटः पुलक युताभ्यां तामुत्थाप्यालिङ्गचभुजाभ्याम् ।

देखो ! मधुकर पुञ्ज गुञ्जरित यह मञ्जुन कुञ्ज में वह सुरत
 सतृष्ण एवं मदकल मूर्ति श्रीराधा कृष्ण प्रवेश किये हैं ॥२२२॥ देखो
 देखो, वह किशलय निर्मित शय्या है, आज ही तुम सब नयनों को
 सार्थक करो ! वह सुरत विमर्दन से स्रस्त विस्त्रस्त हैं, एवं कुसुम,
 कञ्चुक शिखि पिच्छ भी छिन्न भिन्न है ॥२२३॥ इस प्रकार परम
 रसमय बहु मधुरिमाशाली युगल किशोर के बहुविध पदाङ्क द्वारा
 समलङ्कृत सुन्दर स्थानों को देख देखकर वे सब अपरिसीम
 आनन्दित हो गयी ॥२२४॥ उस समय श्रीराधा भी निरतिशय करुणा
 के उद्रेक से विह्वला होकर उन सबको निज पादपद्म के एकान्त रसा
 श्रिता जानकर अतिदीन प्रियतम को जैसे रुष्ट होकर ही बोली, 'तुम
 चलते रहो, मैं और चल नहीं सकती हूँ' ॥२२५॥ तब इयम् भीत
 सन्नस्त होकर ही जैसे धीरे धीरे कहने लगे-कुछ देर के लिए मेरे
 कंधे में ही चढ़ जाओ, बहुविध लीला रचना कारी निज प्रियतम को
 त्वरान्वित होते देख कर श्रीराधा तब फट् कारने लगगई ॥२२६॥
 चतुर चूड़ामणि कृष्ण प्रेयसी का भाव को समझ कर तत् क्षणात्
 आत्म गोपन करगए, श्रीराधा भी उसी समय मूर्च्छिता होगई ॥२२७॥
 हरि भी उसी समय पुनर्वार प्रकट होकर पुलकाञ्चित बहु युगल

अकृत तदुक्तः पुनरन्तर्ध्रं विहित तदङ्गः स्पर्शसमृद्धिम् ॥२२८
 दृष्ट्वा तामथ निज जीवातुं दीनतमामिव पृष्ट्वा हेतुम् ।
 श्रुत्वा तन्मुखतः स्वहितार्था वाचस्ता अभवस्तु कृतार्थाः ॥२२९
 स्व स्वामिन्या पुनरपि सहिताः कालिन्दीये पुलिने याताः ।
 द्रष्टुं राधासहितविहारं संजगुरात्ताः कृष्णनुदारम् ॥२३०
 श्रुत्वा बहुविध कातर वचनं तासां राधा प्रणया रचनम् ।
 आविरासहरिस्तुलविलासः प्रमदासदसि सुभारसहासः ॥२३१

राधया सहजवत्सलात्मना

स्वीकृते ब्रजविलासिनी गणे ।

स्वात्मभावकृतभाववैभवैः

प्रादुरास रसिकेन्द्रशेखरः ॥२३२॥

काचित् सुवलितललितप्रकाण्डं स्वासे न्यधितकृष्णभुजदण्डम् ।

काचन भुवि पतितातिप्रणया उचरणमवृत निजवेणीलतया ॥२३३

द्वारा प्रिया को आलिङ्गन करके उठालिये । श्रीराधा उनको कुछ कहने से ही हरि निज अङ्ग स्पर्शज मुख समृद्धि को दान करके ही पुनर्वार अन्तर्धान करगये ॥२२८ अन्तर गोपीगण निज जीवितेश्वरी राधा को दीनतमा की भाँति देखकर कारण पुछ कर, उनके मुख से आनु पूर्वक मङ्गलमय वृत्तान्त को सुनकर खुसी हो गई ॥२२९॥ निज स्वामिनी राधा के साथ वे सब मिलकर कालिन्दी पुलिन में आगई एवं राधा के साथ विहार दर्शन की लालसा से मनोज्ञ कृष्ण सङ्गीत को गाने लगीं, ॥२३०॥ श्रीराधा की प्रीति से गोपीगण द्वारा सुन्दर रूप से रचित बहुविध कातर वाक्य को सुनकर अतुल विलासी अमृत रस मय हास्य शोभी श्रीहरि प्रमदा समाज में आविर्भूत हुये ॥२३१ सहज वत्सल स्वभावा राधा ब्रजाङ्गणागण को अङ्गीकार करने पर रसिकेन्द्र चूड़ामणि स्वात्मरति स्वात्म क्रीड़ होकर भी भाव समृद्धि को प्रकट कर उनके सम्मुख में आविर्भूत हो गये ॥२३२॥ किसी रमणी सुवलित, ललित, विशाल, कृष्ण, भुज दण्ड को अपनी कंधे में

तप्ता हरिपदपङ्कजयुगलं काचन निदधावधिकुचमुकुलम् ।
 अग्न्यानिमिषितनेत्रयुगेन प्रियमुखमपिवत्तर्पभरेण ॥२३४
 अपरा पुन रपगमनाद् भीता, करयुगलेन प्रणयपरीता ।
 श्रीहस्ताम्भोरुहमतिरुचिरं, समधृतनागरमौलेः सुचिरम् ॥२३५
 ष्वापि विलोचनरन्ध्रेणालं कृत्वा हृदि परिरभ्य रसालम् ।
 योगीवास्ते परमानन्दामृतहृदमग्ना चिरमस्पन्दा ॥२३६
 श्रीराधा रसपोषण निरता, स्तत्सुखसिन्धुनिमज्जनमुदिताः
 प्रिययो लीलां गोपयुवत्यश्चित्रतरामवतारितवत्यः ॥२३७
 स हरिर्ब्रजनवयुवतिसमाजे, तदुरु निचोलोपरिसंरेजे ।
 साङ्गसङ्गनिजकान्तासहितस्तासामास सपर्यामुदितः ॥२३८॥
 बहु वाग्भङ्ग्या व्रजनव सुदृशां सहजप्रेमविवेचकमनसाम् ॥
 प्रीतः स्वारसिकं निजभावं प्रकटितवानथ विरहाभावम् ॥२३९

रखली, किसीने अति प्रणय से दण्डवत् गिरकर निजवेणी लता द्वारा
 उनके चरणों को बंधा । अपर किसीने निमीलित नयनों से सतृष्ण
 होकर प्रियतम के मुखचुम्बन करने लगी ॥२३३-२३४॥ पुनर्वार
 भग जायेंगे सोचकर डर डर से अन्य गोपाङ्गना प्रीति से अपने हाथों
 से नागर मणिके मनोहर हस्त कमलको देरतक पकड़ रखी थी ॥२३५
 किसी युवति ने रसमय श्याम को नयन द्वारा सुन्दर रूप से हृदय में
 स्थापन कर आलिङ्गन किया, एवं योगीजन की भाँति परमानन्द रस
 में मग्न होकर अनेक क्षण तक स्तब्ध होकर रहगयी ॥२३६॥
 गोपरामागण श्रीराधाके रस पोषण में निरत होकर उनके सुखसिन्धु
 में निमज्जित होकर खुस हो गई, एवं प्रियतम युगल की विचित्रतर
 लीलाकी अवतारणा करने लगी ॥२३७॥ व्रजवन की युवतिके समाज
 में वह हरि आसन रूपमें रक्षित नारीयों की चून्दरीयों में बैठगये, एवं
 कान्ताओं के साथ भीड़कर बैठने से कान्ताओं ने हरि को खुब सेवा
 की ॥२३८॥ सहज प्रेम विचारज्ञा व्रजनव युवति गण के बहुविध
 भङ्गी पूर्णवाक्योंको श्रवण कर श्रीहरि आनन्दित होगये । और सम्भोग
 रसमय स्वारसिक धीर ललित भावको प्रकट किए ॥२३९॥ व्रजाङ्गना

व्रजाङ्गनाभि मिलितः स कृष्णः

श्रीराधयातीव विराजमानः ।

तासामुरुप्रेमकथाभितृप्तो,

रासोत्सवायोत्लासितो बभूव ॥२४०॥

अथ कर्पूर पूर रुचिररुचिरे यमुनालहरी शोकरशिशिरे ।

उन्मद मधुकर कोकिलकीरे बहुदतिपरिमलमलयसमीरे ॥२४१॥

परितः स्फुटनवकैरवतलिने विपुल कलिन्दसुतावरपुलिने ।

अद्भुत कल्प तरुभिरति तुभगे केलि सुसाधनवर्षाभिरनघे ॥२४२॥

बहुदीपिनि दिवि शारदचन्द्रे पररसभाजि चराचरवृन्दे ।

द्राघीयसि तद्रजनीयामे धुन्वति धनुरद्भुत नवकामे ॥२४३॥

सुरनरगन्धर्वाद्यैर्वलिते निमित्तगीत सुवाद्यैः ।

नभसि रचित पुरु चित्रविताने, विलसित बहुविधदिव्यविमाने ॥२४४॥

सङ्गीतकपरपारगताभि, बहुविधनृत्य कला तुलिताभिः ।

के साथ मिलित श्रीकृष्ण राधा के साथ मिलित होकर अतिशय शोभित हो गये । उन सब के बहुविध प्रेमालाप से अतिशय तृप्त होकर रासोत्सव को सम्पन्न करने के लिए उल्लसित होगये ॥२४०॥ अनन्तर कर्पूर चूर्ण की भाँति मनोज्ञ यमुना पुलिन को दर्शन किए, वह पुलिन यमुना तरङ्ग स्थित जलकणसे सुशीतल, मलय पवन द्वारा सुगन्धित, नव कैरव पद्मादि द्वारा मण्डित था, केलि विलासादि की सामग्री से पूर्ण, एवं आश्चर्य आश्चर्य कल्पतरुओं से अति सुन्दर एवं परम निर्मल था ॥२४१॥२४२॥ आकाश में शारद चन्द्र निरतिशय उज्ज्वलालोक माला से उद्दीपित है, स्थावर जङ्गम अत्युत्कृष्ट शृङ्गार रस से उन्मादित हैं । उस रास रजनी के चार प्रहर अधिकतर बढ़ गये एवं अद्भुत नव मदन ने पुष्प धनुषमें वाण की योजना की ॥२४३॥ देव, नर, किन्नर, गन्धर्वादि सम्मिलित होकर सुसङ्गीत, सुवाद्य करने लगे, आकाश में बहु विचित्र चन्दोआ रचित थे, एवं बहुविध दिव्य विमान भी शोभित रहीं ॥२४४॥ वे सब सङ्गीत विद्या

गौरतनुच्छवि भरित हरिद्रिः कृष्ण सुधाब्धि प्रीतिसरद्भिः ॥२४५॥

नाद्योचित भूषण वसनाभिः कटितट गाढवद्धरसनाभिः ।

हर्षोत्पलकित तनुलतिकाभिर्दिचित्रारुणनवकञ्चुलिकाभिः ॥२४६

जघनान्दोलितवेणिलताभिः रत्नतिलकरञ्जित भालाभिः ।

समणि कनकमौक्तिकनासाभि मृदुलकपोलविचलमलकाभिः ॥२४७

मुक्ता पङ्क्ति द्युति दशानाभिः सुरचिरचिवुकदन्त वसनाभिः ।

मुष्टिमेव कृशतरमध्याभि स्मरनृपसिंहासन, जघनाभिः ॥२४८

वद्धपरस्परचारुकराभिः कङ्कणगणजडकृतिरुचिराभिः

भ्राजत् ग्रैवेयक हाराभि इचरणरणितमणि मञ्जीराभिः ॥२४९

व्रजनगरौज्ज्वलवरतरुणीभि निर्म्मितहरिरसमणि वरखनिभिः

युगयुगमध्ये स्मरसंरम्भि, श्रीमन्नागरकण्ठधृताभिः ॥२५०

द्विद्विमध्यहरिमणिपरिरम्भि स्वर्णमणिकृतदामतिभाभिः ।

में पारदर्शिनी थीं । बहुविध नृत्य कला में निरुपमा थी, निज अङ्ग
कान्ति से दशदिक् आलोकित कर रही थी, एवं कृष्ण रस सुधासमुद्र
की प्रीति नदीस्वरूपा थीं ॥२४५॥ वे सब नाट्योपयोगी वसन भूषण
पहिनी थीं, कटि में रसना बँधी थी, आनन्द से अङ्गों में पुलकावलि
शोभित हो रही थी, एवं सब रमणीगण अरुण वर्ण की कञ्चुलिका
से शोभित थी, जिनके नितम्ब देश में वेणीलता आन्दोलित हो रही
थी, रत्न तिलक से ललाट पटल रञ्जित था, नासा में मणि सहित
मुक्ता शोभिता रही, एवं कपोल में कुञ्चित केश कलाप मृदुमन्द गति
से चल रहे थे ॥२४७॥ जिन की दन्त पङ्क्ति से ज्योति निर्गत हो
रही थी, चिवुक ओष्ठदेश सुरचिर, मध्यदेश क्षीण, मुष्टिग्राह्य, कर
कमल परस्पर के हाथों से आवद्ध था, कङ्कण की मनोहर ध्वति से
चारों ओर निनादित है, कण्ठदेश ग्रैवेयक हार से एवं मणिमय
मञ्जीर ध्वनि से चरण सुशोभित है ॥२४९॥ निर्मल हरिरस मणि,
विशुद्ध श्रृङ्गार रस की श्रेष्ठखनिस्वरूपा व्रजमण्डल के उज्ज्वल
वराङ्गनागण प्रत्येक दो दो जन के मध्यमें एक एक कामाविष्ट नागर
मणि के द्वारा कण्ठ आलिङ्गित होकर रहीं ॥२५०॥ मध्यवर्ती दो

रचितेऽत्यद्भुत मण्डलराजे वर्षति कुसुमंसिद्धसमाजे
राधाकृष्णोन्मदरसभासः प्रादुरास परमाद्भुत रासः ॥२५१॥

रतिरसपरसीमश्रीतनो राधिकाया ।

श्चरणकमललब्ध प्रौढ तादात्म्यभावैः ॥

व्यरचि रुचिररासश्चित्रतत्तन् कलौघै

व्रजनवतरुणीनां मण्डलैर्मधिवेन ॥२५१॥

अथ संवृधे सोऽद्भुत रासः प्रोन्मदमदनकोटिकृतः हासः ।

उन्मदराधिक, उन्मदकृष्णः प्रोन्मदयुवतिगणोन्मदतृष्णः २५३

सकलनिगमगणसुचमत्कारः सकलेश्वरगणरचितविचारः

परमाश्चर्यप्रेमविकारः परमानन्दमहोत्सवसारः ॥२५४॥

कृष्णरसैकस्फुरदुल्लासः परमाकाशगतध्वनिभासः

दो इन्द्रनील मणि के द्वारा स्वर्णमणि समूह द्वारा गठित हार की भाँति गोपीगण विरचित अति अद्भुत रास मण्डल के उपर सिद्धगण कुसुम वर्षण करने लगे थे, उस समय श्रीराधा कृष्ण को उन्मदरस बहुल परमाद्भुत रास क्रीड़ा का प्रादुर्भाव हुआ ॥२५१॥ जिन सब के देह रतिरस की परमावधि सुपमा को धारण किए हैं, उस श्रीराधिका के चरण कमल में प्रौढ़ तादात्म्य भाव प्राप्त विचित्र कलारस मयी व्रज, युवती गण को लेकर माधव ने मनोहर रास की रचना की २५२॥ इस के बाद अद्भुत रास प्रारम्भ हुआ, कोटि कोटि मदन प्रोन्मद हास्य करने लगे, उक्त रास राधिका को उन्मत्त कर दिया, कृष्ण को उन्मत्त किया, और प्रोन्मत्ता युवती गण भी उन्मद तृष्णा से विचलित ही उठी ॥२५३॥ जिस से वेद समूह भी विस्मित हो जाते हैं, जिस विषय में गोपीश्वर गण भी विविध विचार करते रहते हैं, जिस के स्मरणसे भी परमाश्चर्य प्रेम विकार उपस्थित होता है, उस परमानन्दकन्द रसोत्सवका सार ही रास है ॥२५४॥ सर्वत्र केवल मात्र कृष्ण रसोत्ल्लास ही दिखाई पड़ता है, तुमुल ध्वनि से आकाश व्याप्त हो गया है, दिक् दिक् में महा पटवास कुङ्कुमादि

दशदिक् प्रसृमर वरपटवासः परममहापरिमल भरिताशः ॥२५५॥
 भूषण वसन तनुच्छदिविष्व प्रोलसदखिल भुवन रति हर्षः ।
 केलिचमत्कृति परमोत्कर्ष, सकल पुमर्थ प्रथित निकर्षः ॥२५६॥
 सरभस चक्रभ्रमण विलासः स्मर वश युवति परस्पर हासः ।
 प्रकटोन्मदनवमन्मथकोटिः प्रकटमहाद्भुत रतिपरिपाटिः ॥२५७॥
 किङ्किणि नूपुर वलय घटानां वीणा बेणुतालमुरजानाम् ।
 प्रेमोत्तारमधुरतरगानप्रणयिसमुत्थिततुमुलस्वानः ॥२५८॥
 गगन स्थगित सगण शरदिन्दुः स्तम्भित सुर सुतादिक सिन्धुः ।
 सुखविह्वल खगमृग पशु जातिः पुलक वलित तरु वल्लीविततिः २५९॥
 द्रवमय विगलद् गिरिपाषाणः सरसपवन कृत सख्यभिमानः ।
 मूर्च्छित मुक्तनीवि सुरवनितः खचरवृष्ट कुसुमोर्ध्व निचितः ॥२६०॥

चूर्ण बिखरे हुये है, अहो ! परम सुगन्धि से दशों दिक् आमोदित हो गये ॥२५५॥ भूषण, वसन, देह कान्ति धारा से निखिल भुवन में सुरतानन्द की विजय घोषणा होने लगी, केलि चमत्कार का परमोत्कर्ष विराजित हुआ एवं इस में ही निखिल पुनर्पार्थ का परम सन्निवेश भी हुआ ॥२५६॥ अति वेग से चक्रभ्रमण की भाँति विलास होने लगा, काम वशवर्ती युवतिगण परस्पर हँसने लगी, उन्मत्त कोटि कोटि मन्मथ प्रकटित हुये एवं महाद्भुत रति परिपाटी भी प्रकटित हुई ॥२५७॥ किङ्किणि, नूपुर, वलय के निक्कण से वीणा वेणु करताल मृदङ्गादि की ध्वनि से, प्रेम पूर्ण महा मधुर सङ्गीत से, प्रणयिनी गोपीगण द्वारा तुमुल शब्द उत्थित हुआ ॥२५८॥ आकाश में गण सहित शारदचन्द्र स्थगित हुआ, यमुना मानस गङ्गादि नदी समूह की गति स्तम्भित हो गई, विहङ्ग मृगादि पशु जाति भी परम उल्लास से विह्वल हो उठी, एवं तरुलता समूह भी पुलकाञ्चित हो गये ॥२५९॥ गिरि राज के पाषाण समूह पिघल रहे हैं, सरस पवन तब सख्य भाव को प्राप्त कर लिया अर्थात् समयानुकूल मृदुमन्द वायु प्रवाहित होने लगी, देव वनिता गण मूर्च्छित होगई और उनकी नीवी बन्धन भी खूलगये एवं आकाश चारीगण कुसुम की वर्षा कर के रास

प्रोच्छलदतुलमहारसजलधि भङ्गमुनीश्वरपरनसमाधिः ।
केलिकलेत्सवपरनप्रथिमा कृष्णप्रेमसमुन्नतिसीमा ॥२६१॥

स्मरोन्मदैर्गोकुलसुन्दरीगणैः

समुत्थितो रासविलाससंभ्रमः ॥

सीमा परा प्रेमचमत्कृतीनां

स कोऽपि राधारसिकस्य जीयात् ॥२६२॥

तासां रसरभसव्रशमनसां विपुलपुल तरिपूरितवपुगम् ।
प्रियपरिरम्भोन्मदमदनानां किमपि न संवृतकुचवसनानाम् ॥२६३॥
मुक्तव्रेणिविगलत् कुसुमानां तरलितमुक्तावलिरसनानाम् ।
प्रचलितकुण्डलगण्डतटानां विशलथनीविप्रकटजघनानां ॥२६४॥
व्रुटितचारुकुचकुञ्चलिकानां छिन्नमाल्यमणिहारसराणाम् ।
श्रमजलपूरितसकलतनूनां स्निग्धविलेपाञ्जनतिलकानाम् ॥२६५॥

गण्डल को व्याप्त कर दिये ॥२६०॥ अनुलनीय महारम सागर
प्रोच्छलित हो रहा है, मुनीश्वर गण की परम समाधि दूट रही है,
केलिकला के उन्मद की विशालता हो रही है, एवं कृष्णप्रेम समुन्नति
की परमावधि हो गई है ॥२६१॥ कामोन्मत्ता गोकुलयुवतीगण के
सहित राधा रसिक श्याम सुन्दर के यह अपूर्व रामविलासावेश चमत्
कृति की परम सीमारूप में जय युक्त हो, ॥२६२॥ गोपीयों के मन
केवल रास रभस के वश हो गये, देह विपुल पुलक जाल से परिपूरित
हो गये, प्रियतमके परिरम्भण से मदनवेश अधिकतर बढ़ गया, उन
के कुचावरण वसन विगलित होने पर भी उस को सम्भालने की शक्ति
उनसब की नहीं रही ॥२६३॥ मुक्तव्रेणी समूह से कुसुम विगलित
होने लगा, मुक्तावलि, काञ्चीदाम चञ्चल हो गये, गण्ड तट पर
कुण्डलद्वय भोका ले रहे हैं, एवंनोवी बन्धन शिथिल होने पर जघन
देश प्रकाशित हो गया ॥२६४॥ कुच युगल के आवरण रूप सुचारु
काञ्चुलिका छिन्न भिन्न हो गई, माला समूह मणि हारादि भी छिन्न
भिन्न होगये, श्रम जल से सर्वाङ्ग भर गया, एवं अङ्ग राग अञ्जन

प्रियतमपरिबुम्बितवदनानां प्रियतमनखरोत्तिलखिलकुचानाम् ।
 प्रियतमभुजयुगकलितगलानां प्रियतममृश्रमसलिलानाम् ॥२६६॥
 राधासन्धितकञ्चुलिकानां राधाग्रथितरुचिरनीवीनाम् ।
 राधास्नेहैकात्म्यधनानां शतगुणवर्धपरमसुषमाणाम् ॥२६७॥
 माधवमधुराधरमधुपानां मुहुरति दुर्धरमदनमदानाम् ।
 परकाष्ठांगतउन्मदललितः कोऽपि सुखाम्भोनिधिरुच्छलितः ॥२६८॥
 गायन्तीनां दयितमिथुनां सानुरागैः सुरागैः
 नृत्यन्तीनां प्रमदमदनोद्दामलीलाकलाभिः ।
 श्रीराधायाश्चरणकमलस्नेहतादात्म्यभाजाम्
 रासक्रीडासुखमनुपमं वल्लवीनां वभूव ॥२६९॥
 तत्र यदा सुरतैकसतृष्णं मण्डलमध्ये राधाकृष्णौ

तिलक प्रभृति की म्लानता आ गई है ॥२६५॥ उन सब के वदन,
 प्रियतम द्वारा चुम्बित हो गये, कुच युगल प्रियतम के नखरा घात से
 क्षत विक्षत हो गये, प्रियतम के भुज युगल द्वारा उन सब के गलदेश
 गृहीत हुआ, एवं प्रियतम ने उनसबके श्रमजल राशि को मिटा दिया
 ॥२६६॥ श्रीराधाने उनसब की कञ्चुलिका को बंध दिया, नीवी
 बन्धन भी कर दिया श्रीराधा के स्नेह ही उन सब के लिए महाधन
 है, और उस से उन सब की सुपमा शत शत गुण से बढ़ी ॥२६७॥
 माधव ने उन सब के मधुर अधर के मधुपान किया, मुहुर्मुहुं उनसब
 के मदनावेश अति दुर्धर्प भाव को प्राप्त किया अहो ! चरमावधि प्राप्त
 उन्मादनादायक, अतिमनोज्ञ किसी एक अनिर्वाच्य सुख समुद्र
 उच्छलित हुआ ॥२६८॥ वे सब सुन्दर सुन्दर राग रागिणी आलाप
 के द्वारा युगल किशोर की कीर्तिगाथा को गाने लगीं, प्रमद मदन के
 आवेश से उन्होंने अपरिसीमलीला कलादि प्रकट कर नृत्य किया,
 उन्होंने श्रीराधा चरण कमलके साथ स्नेह से तादात्म्य भाव को प्राप्त
 कर लिया, अहो ! गोपियों की वह क्रीड़ा निरूपम सुख निदान रूप हो
 गई थी ॥२६९॥ अनन्तर जब सुरतैकलालस श्रीराधा कृष्ण मिलित

मिलितौ ननृततुरथवा क्रमशः कोऽपि तदासीद्रासे सुरसः ॥२७०॥
 वाद्यगीतपरयुवतीवृन्दे, पूर्णचमत् कृतिपरमानन्दे
 तददर्शयत मुनागरमिधुनं स्वस्त्रयुग्मिभा अधिरसनटनम् ॥२७१॥
 राधा तत् प्रिययोरभवस्ता, एकैकाङ्गेऽद्भुतरसवलितः ।
 चलनविभङ्गीरतिमुचिचित्रा वीक्ष्य वीक्ष्य चिरमनुकृतचित्राः २७२
 सङ्गीतक बहुभङ्गीसारं, कमपि विहारं परमोदारम् ।
 राधा तन्नागरयोर्मधुरं दृष्ट्वा मूर्च्छद् दनमपि सुचिरम् ॥२७३॥
 रसमयनृत्यकलाद्भुतसङ्गी तुङ्गीतनवरतिरङ्गतरङ्गी ।
 राधामाधवयो रतिललितः कोऽपि विलासः समभूदुदितः ॥२७४॥
 अलकचिवुककुचकरस्पर्शो नीविधारणमधरामृतकर्षो ।
 परमचित्रपरिरम्भणचुम्बं शुशुभे तल्ललितं रसजृम्भम् ॥२७५॥
 मूर्च्छितमलुठद् गोपीवृन्दं मूर्च्छितमपतत् खगपशुवृन्दम् ।
 मूर्च्छामापलतात्स्वृन्दं सर्वममूर्च्छत्तत्र रसान्धम् ॥२७६॥

होकर अथवा क्रमशः उस मण्डल में नृत्य करने लग गये तो महारस
 प्रकटित हुआ ॥२७०॥ गोपीगण नृत्य गीत में तन्मय हो जाने पर
 एवं रास मण्डल में पूर्ण चमत् कारमय परमानन्द विराजमान होने
 से मनोमोहन नागर द्वयने रसपूर्ण नृत्य विद्याको प्रकटन किया ॥२७१॥
 राधा एवं उन के प्रियतम कृष्ण के एक अङ्ग की अति विचित्र चलन
 विभङ्गी को देखकर गोपीगण अद्भुत रस युक्ता हो गईं अनेकक्षण
 तक चित्र पुत्तलिका की भाँति रह गईं ॥२७२॥ राधा एवं उनके
 नागर के सङ्गीत चातुर्य एवं परम रमणीय मधुर अनिर्वाच्य विहार
 को देखकर वृन्दावनस्थ स्थावर जङ्गमादि अनेक समयतक मूर्च्छित
 होकर रह गये ॥२७३॥ तब रसमय नृत्य कला के साहचर्य से अति
 उद्दाम नव सुरत द्वारा तरङ्गायित श्रीराधा माधव के अनिर्वचनीय
 विलास उदित हुआ ॥२७४॥ अलक कुञ्जित केश कलाप चिवुक
 एवं कुच मण्डलादि में कर स्पर्श होने लगा, नीवि धारण, अधरामृत
 का आकर्षण होने लगा । परम विचित्र परिरम्भण चुम्बनादि होने
 लगा और वह रस विलास भी क्रमशः सुन्दरतर हो गया ॥२७५॥

अथ रसिकेन्द्रः स्थितनिजकान्तः सुतुमुलरासक्रीडाश्रान्तः
 अविशद् वारि सगोपीवृन्दः करिणीगणवृत इव कलभेन्द्रः ॥२७७॥
 तत्र रचितपरमाद्भुतकेलिः शुशुभे स रसिकमण्डलमौलिः ।
 राधापक्षव्रजयुवतिभिः पर्युक्षितउद्वसितमुखीभिः ॥२७८॥
 क्रीडित्वा बहु सलिलोत्तीर्णः पुनरन्याम्बरभूषणपूर्णः ॥
 कुङ्कुमलिप्तः प्रिययादीप्तः कुञ्जशयनमधि स सुखं सुप्तः ॥२७९॥
 एवमपरां शारदरजनीरखिला एव व्रजनवतरुणीः
 आनीयारचि राधापतिना रासो नवनगरतिवशमतिना ॥२८०॥

परम रस समुद्रोज्ज्वलभणस्याति काष्ठा ।

परम पुरुषलीलारूपशोभातिकारुष्ठा

परमविलसदाद्यप्रेमसौभाग्यभूमा ।

जयति परपुमर्थोत्कर्षसोमा स रासः ॥२८१॥

गोपीगण मूर्च्छित होकर लौट लगाने लगीं पशु पक्षिगण मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरने लगे, वृक्ष लतादि भी मूर्च्छित होगये अधिक क्या कहूँ । वहाँ के सब के सब व्यक्ति रसान्ध होकर मूर्च्छाग्रस्त हो गये ॥२७६॥ तत् पश्चात् रसिक राज, निज कान्तामणि के साथ सुतुमुल रास क्रीड़ा से परिश्रान्त होकर गोपीवृन्द के साथ करिणी गण के साथ मत्त कारवर की भाँति जल क्रीड़ाके लिए जल में प्रविष्ट हो गये ॥२७७॥ रसिकेन्द्र चूड़ामणि परमाद्भुत केलि विलासादि की रचना कर शोभा विस्तार करने लगे, जल के और मुहकर राधा मध्य वर्तिनी व्रज नारीगण को उत्तम रूप से सिञ्चित किए ॥२७८॥ बहुविध जल क्रीड़ा के बाद श्याम सुन्दर जल से तीर में उठ कर पुनर्वार वसन भूषणादि को धारण किये, अङ्ग में कुङ्कुम लेपन कर प्रियाके साथ शोभित होकर कुञ्जमध्यमें सुख शय्यामें सो गये ॥२७९॥ इस प्रकार अनन्त शारद रजनी में निखिल व्रजनव युवती गण को ही आकर्षण कर श्रीराधावल्लभ नव नव रतिरस के वश हो कर रास रचना किये ॥२८०॥ वह रास परम रस सागर की प्रकाशशील

शुद्ध भावस्पृहावत्या मत्या कृष्णैकदत्तया
 अद्भुतोऽयं माया रास प्रबन्धः प्रकटीकृतः ॥२८२॥
 यथास्फूर्तिमया रास विलासोराधिकापतेः
 वर्णितः स्वमुदे तेन मुदिता सन्तुसाधवः ॥२८३॥
 इति समाप्तोऽयं रास प्रबन्धः

इसं रास प्रबन्धं यो गायेत् कृष्णानुरक्तधीः ।
 लुठन्तितत् पदतले पुमर्थाः सर्व उत्तमाः ॥

—***—

चरमावधि है, परम पुरुष की लीला, रूप, शोभा की चरमावधि है,
 परम विलासमय आद्य (शृङ्गार) प्रेम सौभाग्यातिशय व्यञ्जक एवं
 परम पुरुषार्थ शिरोमणि की सीमा रूप में उत्कर्ष मण्डित हो ॥२८१॥
 शुद्ध भाव स्पृहा शीला एवं श्रीकृष्णमें अनन्य निष्ठा युक्त मति के द्वारा
 यह अद्भुत रास प्रबन्ध मेरे से प्रकट हुआ ॥२८२॥ स्फूर्ति के अनु
 सार मैंने श्रीराधा रमण के यह रास विलास का निज आनन्द के
 लिए वर्णन किया, इस से साधुगण भी आनन्दित होंगे ॥२८३॥
 कृष्णानुरक्तचित्त व्यक्ति यदि इस रास प्रबन्ध का गान करे तो उसके
 पदतल में सकल उत्तम पुरुषार्थ लुण्ठित होगा ॥२८४॥

इति श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित

आश्चर्यरासप्रबन्धानुवाद समाप्त ॥

गौर गदाधरं नत्वा प्रेमानन्द कलेवरम् ।

विदुषा हरिदासेन भाषाव्याख्या कृतामुदा ॥

—***—





श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्
श्रीहरिदासशास्त्रि सम्पादिता ग्रन्थावली

प्रकाशितग्रन्थरत्न	प्रकाशन सहायता
१ । वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	२०'००
२ । नृसिंहचतुर्दशी	०'५०
३ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	४'००
४ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (वङ्गलापयार)	४'५०
५ । श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति	३'५०
६ । श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका	२'००
७ । श्रीगोविन्दलीलामृतमूलटीकाअनुवाद सर्ग १-४)	५'५०
८ । ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद)	१'५०
९ । संकल्पकल्पद्रुम सटीक, सानुवाद	२'००
१० । चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद)	} ३'००
११ । श्रीकृष्णभजनामृतम् (सानुवाद)	
१२ । श्री प्रेमसम्पुटः (मूल टीका अनुवाद सह)	४'००
१३ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद)	३'७५
१४ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद वङ्गला)	३'००
१५ । ब्रजरीति चिन्तामणि (मूल, टीका, अनुवाद,)	४'००
१६ । श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	१'५०
१७ । राधारसमुधानिधि (वङ्गला)	१'७५
१८ । श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५'००
१९ । हरिभक्तिसार संग्रह	१२'००
२० । श्रुतिस्तुतिव्याख्या	१४'००
२१ । श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	४'००
२२ । श्रीराधारसमुधानिधि: (हिन्दी)	०'६०
२३ । धर्म संग्रहः	३'७५
२४ । श्रीचैतन्यमुक्तिमुधाकरः	४'००

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीहरिदासशास्त्रि सम्पादिता ग्रन्थावली

प्रकाशितग्रन्थरत्न

प्रकाशन सहायता

२५ । सनत्कुमारसंहिता

२५०

२६ । श्रीश्रीनामामृत-समुद्रः

०६०

१७ । रास प्रबन्धः

३००

प्रकाशनरतग्रन्थरत्न

१ । श्रीगोविन्दलीलामृत (५-२३ सर्ग)

२ । दशश्लोकीभाष्यम् । ३ । साधनदीपिका

४ । स्वकीयात्वनिरासविचारः तथा परकीयानिरूपणम्

